कश्मीर-दर्पण

§ कश्मीर और तदधिष्टातृ-देवी
श्री शारिका भगवती के प्रादुर्भाव-
लक्ष्य विशिष्ट विवरण §

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

प्रथम-खण्ड

रचनाकार :-
प्रेमनाथ हण्डू
§ शास्त्री-प्रभाकर §
[illegible] तलनाथ - [illegible]-श्रीनगर [illegible]कश्मीर[illegible]

प्रासंगिक - कथन (1) Page

प्रासंगिक - कथन

कश्मीर - दर्पण ॥ प्रथम खण्ड ॥

कश्मीर -दर्पण कश्मीर तथा तदधिष्ठातृ देवी श्री शारिका भगवती के प्रादुर्भाव की यथावद् प्रतिकृति है । इसमें :-

> बीजैः सप्तभि रुज्ज्वला कृति रसौ या सप्त सप्ति द्युति :
>
> सप्तर्षि प्रणताङ्घ्रि पंकज युगा या सप्तलोकार्ति हृद् ।
>
> कश्मीर-प्रवरेश-मध्य नगरे प्रद्युम्न-पीठे स्थिता
>
> देवी सप्तक-संयुता भगवती श्री शारिका पातु नः ॥

देवीपंचक के देवी (शारिका) सूक्त के मांगलिक श्लोक में सांकेतिक व्यवस्था का विवरण अक्षरशः सूचित है, वास्तव में यही -विवरण पुस्तक रचना की आधारशिला है ॥

यह भी सत्य है :-

> यैषा देवीत्युमा सैव कश्मीरा नृप सत्तम
>
> आसीत् सरः पूर्णं जलं सुरम्यं सु मनोहरम्
>
> सतीदेशो इति ख्यातं सुरक्रीडं मनोहरम् ॥

नीलमत पुराण साक्षी है :-

सती देवी ही उमा देवी है, कश्मीर देश में प्रकट होने से "कश्मीरा" नाम से विश्रुत है । चिरकाल तक यही सतीदेश देवताओं के लिए "देवस्थली" बनी रही । परिणाम में :-

भगवती-अष्टादश भुजा श्री शारिका, द्वारा महामुनि-कश्यप कश्मीर राज्य पर अभिषिक्त हुए, स्वयं श्री शारिका प्रद्युम्न पीठ (चक्रेश्वर) पर

"श्री-चक्र" के विस्तार से विराजमान रही । कश्मीर सिद्ध पीठ बना, त्रिकोटि देवताओं का आवास स्थान भी, चारों-ओर जहां कहीं भी देवता बसते थे, यहीं आकर बसने लगे । इसी अहमहमिकया में भगवती क्षीर-भवानी को भी यहीं पदार्पण करने की इच्छा हुई, फलत: लंकापुरी से यहीं सिद्धपीठ में प्रादुर्भूत हुई, वहां "श्यामा, नामी थी, यहां "महाराज्ञी, नाम से विख्यात हुई और 360 अलगर्दों समेत "तूलामूला, स्थान में विराजमान रहीं । चूंकि "श्री श्री महाराज्ञी प्रादुर्भाव:" नामक पुस्तक-रचना पहले की रचना है, उसी की देख रेख में इस "कश्मीर"दर्पण " की रचना भी सम्भव बनी । दोनों पुस्तकों के प्रणेता एक ही सज्जन हैं ।

यही कारण है सिद्धपीठ दूसरे शब्दों में प्रद्युम्न पीठ (चक्रेश्वर) जिसके प्रथम-द्वार पर श्री गणेश जी की महान् शिलामूर्ति प्रतिष्ठित है, इनकी अर्चना साधनों पर देवी दरबार में प्रवेश, सबको दर्शन सुगम मिलता है ।

यथार्थ में इन सबका विशिष्ट-विवरण वर्तमान प्रथम-खण्ड में विद्यमान है, पुस्तक आपके हाथ में है ।

इसी प्रकार अन्य विभूतियां (देवियां) यथा ----

श्री ज्वालामुखी, श्री भद्रकाली, श्री सिद्ध लक्ष्मी, श्री महालक्ष्मी, श्री शारदा, श्री वरदा तथा विशिष्ट-देवी-सप्तक- श्री अमा-कामा, पार्वती-टंक-धारिणी-तारा-पार्वती और श्री त्रिपुर सुन्दरी आदि विशिष्ट देवियों ने भी यहीं भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रतिष्ठा प्राप्त की है, जिनका आद्योपान्त वर्णन "कश्मीर-दर्पण" के"दूसरे खण्ड" में करना अभिप्रेत है । दैवेच्छा हो,

उसका भी श्री गणेश होगा ।।

संकल्प सिद्ध हुआ । हां, अति विशिष्ट बात यह है, रचनाकार ने कुछ विशेष घटनास्थलों एवं अति-विशेष वर्णनस्थलों को स्थिर तथा संवेदनात्मक होने के आशय से कविताओं में रचना बद्ध किये, ताकि घटना के सारे भाव सुगम और सरल बन जायें । अन्त में हुआ भी ऐसा । परिणाम में ये सारे पद्य प्रमाण के तौर उपस्थित किये जाते हैं ।

प्रिय सज्जन, पुस्तक आपके हाथ में है, इसमें गुण-दोष-समीक्षा आपका अधिकार और कर्तव्य है । कोई यथोचित-परिवर्तन अथवा संशोधन करना चाहें तो अवश्य सूचित करें, सृजनात्मक आलोचना का स्वागत करना सबका धर्म है । इति -

विनीत-रचनाकार

प्रेमनाथ हण्डू

(शास्त्री प्रभाकर)

शीतलनाथ, सत्थू, श्रीनगर

आषाढ़ नवमी

20-7-1992

द्वारा — 72-बी, पाकेट एफ,
मयूर विहार, फेज़-2
दिल्ली- 110091

ॐ

नमः श्री शारिका भवान्यै ।

काश्मीर-दर्पण

§ प्रथम खण्ड §

----

§ प्रथमो भागः §

इस भाग में महामुनि कश्यप-ऋषि की मानस पुत्री "कश्मीरा" और उसके अन्तर्वर्ती प्रवरेशपुर § श्रीनगर § प्रद्युम्नपीठ-शारिका-पीठ §हारी पर्वत§ प्रद्युम्न-शिखर §चक्रेश्वर§ उस पर विराजमान पीठेश्वरी- शिलारूपा- अष्टादश भुजा श्री शारिका भगवती का प्रादुर्भाव तथा तद्विषयक पुरावृत्त का यथावत् विवरण वर्णित है।

इसमें वर्णित पुरावृत्त का संक्षिप्त सार :-

युगधारा के अनुसार त्रेता के अन्त और द्वापर के प्रारम्भ में जब भगवान श्रीकृष्ण ने अवतार लेकर सारी भारतभूमि को पावन किया था, ठीक उसी समय महामुनि कश्यप की मानसपुत्री "कश्मीरा" और प्रद्युम्न-पीठ §हारी-पर्वत §की प्रतिष्ठा हुई है। दक्ष प्रजापति की पुत्री "सतीदेवी का देहत्याग वस्तुतः इसकी आधारशिला है।

सतीदेवी का देहत्याग

पौराणिक कथा के अनुसार पिता दक्ष-प्रजापति और माता मनु प्रजापति की सुपुत्री मानवी से सतीदेवी का प्रथम जन्म और पाणिग्रहण

भगवान् शंकर से हुआ था । विशेष कारण वश दक्ष-प्रजापति को अपने जामाता भगवान शंकर से वैमनस्य हुआ । इस समय तक सती देवी को भगवान शंकर से कोई सन्तति नहीं हुई थी, जिस की उसे महत्वाकांक्षा थी । कुछ समय बीता, दक्ष प्रजापति के यहां एक महान यज्ञ का अनुष्ठान हुआ, जिसमें भगवान शंकर के बिना सारे देव निमंत्रित थे । सतीदेवी भी यज्ञ पर उपस्थित थीं । पर उसने महायज्ञ में अपने पति महादेव के नाम यज्ञभाग न दिए जाने पर अपने को अपमानित माना, और वहीं यज्ञमंडप पर योगाग्नि द्वारा अपना शरीर भस्मसात् कर डाला । यह वही समय था, जब कश्मीर एक बड़ा सरोवर और जलोद्भव नामक राक्षस का निवास स्थान था । सती देवी का समाचार मिलते ही भगवान शंकर क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठे । यज्ञ-मंडप पर आकर स्वयं उन्होंने दक्ष प्रजापति, निमंत्रित देवों तथा महायज्ञ का सर्वथा-विध्वंस किया, और सती की भस्मी को इसी सरोवर में समर्पित किया । चिरकाल तक भस्मी इसी सरोवर के जल प्रवाह में बहती रही । निदान सरोवर "सतीसर" और देश "सतीदेश" के नाम से व्यवहृत हुए ।

कश्मीर हिमालय का एक अविच्छिन्न प्रान्त है, हिमालय के अधिष्ठातृ देव हिमवान की धर्मपत्नी "मीनावती" नित्य-प्रति इस सरोवर [सतीसर] में जल क्रीडा करती थी । उसने एक दिन अचानक काई रूप में प्रवाहित हुई उस भस्मी को देखा और "सारिका-सारिका" इस शब्द से आमंत्रित किया ।

यथार्थ में संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार "

"सरति-प्रवहति (गच्छति) के-जले" इस व्युत्पति के अनुसार "जल में तैरते-वस्तुजात को और "मैना" नामक पक्षी को भी "सारिका "कहते है । चूँकि संस्कृत वर्णमाला में "स" और "श" दोनों पर्यायवाची अक्षर है, दोनों में कोई भेद नहीं, अतः "सारिका" कहे या "शारिका" दोनों समानार्थ वाची शब्द है ।

मार्तण्ड /

इस संबंध में यह बात स्मरणीय है कि सतीदेवी की तेजोमयी भस्मी सतीसर की जिस शिला से रूक गई थी, वही तेजोमयी अग्नि शिखा {भर्गशिखा} बन गई थी । महामुनि कश्यप की पत्नी अदिति के 13वें पुत्र को, जो 12 सूर्यों के अधिक होने के कारण मुर्दा अण्डाकार पिंड था, वह भी यहीं तेजोमय ज्योति प्राप्त कर गया था । अतः "मृतात् अण्डात्-शरीरात् प्रादुर्भूतः" इस व्युत्पति से, अर्थात् पिण्डाकार मृत-शरीर से उभरा हुआ, तेजः-स्थान "मार्तण्ड" कहलाने लगा ।

भर्गशिखा /

अनिर्वचनीय तेज: पुंज को संस्कृत में "भर्गः" कहते है, महा गायत्री मंत्र प्रमाण है :- " भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् " इस प्रकार चारो-वेद, उपनिषद, सभी धार्मिक ग्रन्थ और ऋषि-मुनि मुक्तकंठ से इसी तेजः पुंज का मधुरगान करते हैं । इसकी प्रतिष्ठा "मार्तण्ड" तीर्थस्थान के पूर्ववर्ती पर्वत-शिखर पर निश्चित है । वस्तुतः यह उसी काई बनी भस्मी

का तेज: पुंज है, जिसको महादेवी मीनाक्षी ने "सारिका-सारिका" नाम से आमंत्रित किया था । स्वयं प्रकाशमान परमेश्वरी भगवती शारिका का यही अवाङ्‌ मनसगोचर तेज: पुंज है, जो अभी तक "भर्गशाखा" शुभ नाम से प्रचलित और प्रसिद्ध है ।

नाव-बन्धान /

यह तथ्य सर्वमान्य है कि प्राकृतिक सुषमा का सर्वोत्तम स्थान "कश्मीर" है । इस देश को आज भी ऋषिवाटिका, भूस्वर्ग, कश्यप-निवास, कश्यपपुर तथा देवस्थली आदि शुभ नामों से पुकारते हैं, इसे "सतीदेश" तथा जल से लबालब होने के कारण "सतीसर" भी कहते थे । सतीदेवी अति प्राचीनकाल में पतिदेव भगवान शंकर के साथ इसी सरोवर में जल-विहार तथा नौका-विहार करती थी । नीलमत-पुराण के अनुसार मनु प्रजापति ने प्रथम प्रलय के अवसर पर इसे सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक पदार्थों के बीजों को नाव में संग्रहित कर रखा था, और भगवान विष्णु ने स्वयं मत्स्यावतार धारण कर अपने दान्तों से नाव की रस्सी को पकड़कर उसे, एक उच्च कोटर से बांध दिया था । इसी कोटर स्थान को "नाव-बंधन के नाम से अब भी पुकारते है ।

जगन्माता का प्रादुर्भाव

सतीदेश, जो सतीसर के नाम से प्रसिद्ध था, जलोद्भव नामी राक्षस, का निवास स्थान था । इसके सीमान्त-पर्वत प्राय: सदा वृक्षों, फलों तथा फूलों से समाच्छन्न रहते थे। यही कारण था महामुनि और महर्षिगण अधिकतया इसी ऋषि-वाटिका की अधास्यका में तपश्चर्या में लीन रहते थे। पर मौका पाकर जलोद्भव-राक्षस तटवर्ती मुनियों को मारकर उनसे अपनी भूख मिटाता था, और यह क्रम सदियों तक चलता रहा । दैवयोग से एक दिन महामुनि कश्यप, तीर्थाटन {तीर्थयात्रा} करते-करते सतीदेश पधारे। यहां के तपस्वियों से मिले । उनकी दुख-भरी कथा सुनीं। पर मुनियों की दुर्दशा तथा राक्षसों के अत्याचार को देख और सुनकर उनसे सहा न गया, ~~वे उनकी यह दशा देखकर सीधे~~ निदान वे सीधे ही अपने पितामह ब्रह्माजी के पास प्रस्थान कर गये । यहां कश्यप की प्रार्थना पर त्रिकारण {ब्रह्मा-विष्णु और महेश} की उपस्थिति में सब देवों की बैठक हुई । यह प्रस्ताव पारित हुआ कि सती देवी स्वयं अष्टादश-भुजा शारिका का रूप धारण कर, अपने अधिकार में रहने वाले अन्य देवी सप्तक {अमा-कामा-चार्वङ्गी आदि} की सहायता से सतीसर को ही क्या, सम्पूर्ण जगद को यथावद व्यवस्थित करेगी । सम्पूर्ण चराचर को सर्व प्रकार की ईतियों, बाधाओं से रक्षा करेंगी, सर्व समृद्धि से उभार करेंगी ।

इस अभियान को सफल बनाने के लिए-"प्रादुरासीत्-जगन्माता-वेदमाता सरस्वती", "भवानी सहस्त्रनाम का यह-पद्यांश इसका साक्षी है ।

इस प्रकार सारे देव यहां आये, और देवी को अपने-अपने आयुधों (शस्त्रास्त्रों) से सुसज्जित कर दिया ।

दुर्गासप्तशती सम्पूर्णतया इसकी साक्षी है ।

बाराहमूल (आधुनिक बाराहमूला)

सती देश चारों ओर पर्वतमाला से घिरा था ।

सारी वादी जलमग्न थी । महामुनि कश्यप की प्रार्थना पर स्वयं विष्णु ने वराहरूप धारण कर - "वराहमूल" में राक्षस-हिरण्यकश्यप के भाई हिरण्याक्ष को मार डाला और माता पृथ्वी, जो कि राक्षस के भय से जलमग्न थी, अपने दन्ताग्र से उठाकर " वासुकि नागराज के फण पर स्थिर किया । वराहमूल के मध्यगत बुद्धमूल में अभी तक इसकी प्रतिष्ठा प्रचलित है । किंवदन्ती है, निदान-वासुकि नागराज —— जिन्होंने अपने बलिष्ठ पूंछ के प्रहारों से वराहमूल से नीचे की पर्वत-श्रृंखला को खण्डशः कर दिया और सतीसर का सारा जल प्रवाह-रूप में इसी मार्ग से निकला, सारा जल सूख गया। सतीसर, सतीदेश में परिवर्तित हुआ । अन्त में अष्टादश भुजा श्री शारिका भगवती ने इसे अपनी प्रतिष्ठा से जग विख्यात बना लिया ।

विष्णुपाद

(कौंसर नाग)

सती-देश के दक्षिण में पांचाल पर्वत की बड़ी श्रृंखला है, जिसमें कई ऊंचे तरयुन्नत, शिला शिखर है, जो "कौंसर के कोठर" नाम से अभी तक विख्यात है । इनके मध्यवर्ती भू भाग में एक और महान सरोवर है, जो "कौंसर नाग" के नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

बहुत समय पहले यहां "बलि दानव" का आधिपत्य था । सारे भूमण्डल को अपने वश में रखकर उसने सर्वत्र अपनी धाक जमाई थी । यही कारण है कि भगवान विष्णु ने वामनावतार धारण कर त्रिविक्रम [तीन पांव के-परिमाण] दान में भू:-भुव: को दो पदों में समेट लिया, तीसरे पद में इसको पाताल में ऐसा धंसा दिया, जहां से उसका पुनरुद्धार असम्भव बना । तभी से यह स्थान "विष्णुपाद" नाम से प्रख्यात रहा । [दशावतार वर्णन इसका प्रमाण है] इस सारे सरोवर की आकृति साक्षात पूरे पांव की सी है । इसमें पांचों उंगलियों के चिन्ह दक्षिण की ओर, और एड़ी का चिन्ह उत्तर की ओर है । पांचों अंगुलियों से जल की पांच धारायें बहती हुई दक्षिण भाग को सींचती है और ऐडी की ओर बहती धारा नदी के रूप में उत्तरीय भूभाग [कश्मीर] को सींचती है । विशाव" नाम की यह नदी कश्मीर प्रान्त की महान निधि है । यह भगवान विष्णु के पाद से सम्बन्धित होने से "विशाव" नाम से प्रसिद्ध है। विशाव-विष्णु नाम का ही अपभ्रंश है ।

अमरनाथ /-

हिमालय की पुत्री पार्वती अपने पूर्वजन्म [सती रूप] के पति भगवान शंकर को पुन: प्राप्त करना चाहती थी । इस कल्पना से हिमालय की पर्वत-श्रृंखला में उसकी गवेषणा करती हुई, अन्तमें यहीं दूर की एक गुफा में पहुंची, और यहीं शंकर को समाधि में मग्न पाया । अत: स्वयं अकिंचित कर हो, वहीं उनकी सेवा निमित ठहरी । शंकर भगवान को भी पूर्वजन्म का नैसर्गिक प्रेम अन्तस में उभर आया और प्रसन्नता में सती पर दया की दृष्टि डाली तथा इसी गुफा में उसे अमर-कथायें सुनाने लगे । समय पर यही गुफा अमरेश्वर" नाम से अमर बनी ।इसीलिए आज भी

अमरनाथ का नाम सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

काम दहन /

(पौराणिक कथा के आधार पर)

स्वर्गलोक में तारकासुर का बोल बाला था, स्वर्गलोकवासी इसके अत्याचारों से तंग आकर कष्ट भोगते थे, किसी भी प्रकार इससे छुटकारा पाना चाहते थे। इस कष्ट से तंग आकर वे ब्रह्माजी की शरण मेंगये और उनकी पूर्वस्तुति में यह वाक्य बोले। प्रभो! दुखादाई असुर से हमें छुटकारा कैसे प्राप्त होवे"?। ब्रह्मा जी बोले - तारकासुर का वध अनोखा कार्य है। हम सब, जो इस समय की जनसंख्या में जीवित हैं हम से उसकी मृत्यु असम्भव है, हां, जो महाबली अब जन्मेगा, उसकी प्रधानता (सेनापतित्व) में देव सेना इसका वध करने में समर्थ होगी, अन्यथा नहीं। तुम सब स्वयं महादेव से उसके अंश की उत्पति का प्रयत्न करो। उत्तर सुन सब-देव भगवान शंकर के पुन: विवाह की चिन्ता में मग्न हो गये। यह वही समय था, जब स्वयं शंकर-भगवान भगवती-तारिका स्वरूपा पार्वती सती को अमर गुफा में अमर कथायें सुना रहे थे, देवताओं ने समय का सदुपयोग किया, कामदेव से सहायता की प्रार्थना की, कामदेव वहीं आ पहुंचे और भगवान शंकर पर संमोहनास्त्र का प्रयोग कर गये। इस प्रयोग से भगवान

शंकर वामदेव बने, क्रोध भरी दृष्टि पात में कामदेव को भस्मावशेष बनाया, भस्मी का ढेर बने पति-कामदेव को देखकर उसकी पत्नी "रति" विलाप की पराकाष्ठा में अचेत पड़ी । निदान आशुतोष-शंकर, रति को कृष्णावतार में अपने पति से पुनर्मिलन का अभीष्ट वर दे गये ।

रति /

रति कामदेव की प्रिय पत्नी थी, पति विरह में वह सती हो गई थी । कालान्तर में महामानी शंबर-दैत्य के घर इसने पुनः जन्म लिया और मायावती नाम से वहां - उसका नामकरण हुआ, भगवान शंकर के वरदान से उसे पूर्वजन्म का स्मरण जागृत हुआ, अत: वहां भी वह अपने पूर्वजन्म के पति की खोज में लगी रही ।

प्रद्युम्न /

कामदेव भगवान-विष्णु के अंशोद्भव थे, भगवान् शंकर के कोपानल से भस्म की ढेरी बन, उन्हीं के वरदान से कालान्तर में पुन: विष्णु के अवतार भगवान श्रीकृष्ण के अंशज हो, महारानी रूक्मिणी के प्रिय-पुत्र बने, पुत्र अभी पैदा ही हुआ था कि महामुनि नारद की इस भविष्यवाणी " रे शंबर ! सावधानतया सुनो, महारानी रूक्मिणी के गर्भ से तेरा काल पैदा हो गया है " के आधार पर शंबर दैत्य ने इसी रात्रि में नवजात का अपहरण करवा कर उसे गहरे समुद्र में डुबा दिया । वहां एक मत्स्य नवजात को अपना एक ग्रास बनाता है, विधि बलवान है ।

एक मत्स्यजीवी, इसी मत्स्य को जाल में पकड़ता है, और शांबर दैत्य की भेंट करता है। रसोइया मत्स्य को चीरता है, दैवगति से जीवित अवस्था में ही शिशु को पाता है, और पुत्र रूप में उसे पालता है, यह रहस्य, रहस्यमय ही रहता है। समय बीतता है, दोनों मायावती और मत्स्यजात शांबर के घर पलते हैं, एक साथ युवावस्था पाते है, दोनों एक दूसरे से परिचित होते है। दोनों को पूर्वजन्म का इतिवृत्त विदित होता है दोनों कूटनीति से शांबर दैत्य का संहार करते हैं। अन्त में दोनों द्वारिका पुरी में जाते है। यादव खोये शिशु को पाकर फूले न समाते है। भगवान कृष्ण शिशु को "प्रद्युम्न" नाम से नामकरण करते हैं, निदान दोनों प्रद्युम्न और मायावती (रति और कामदेव) दाम्पत्य जीवन बिताते हैं।

जरासंध और श्री कृष्ण /

अब तक 16 बार जरासंध, श्रीकृष्ण से परास्त हुआ था। अब की बार महाबली काल यवन का बल प्राप्तकर वह पुनः युद्ध के लिए श्रीकृष्ण को ललकारता है। श्रीकृष्ण पहले ही अपने योगबल से यह सब जान चुके थे। अतः उन्होंने सारे परिवार को मथुरा से द्वारिकापुरी में सुरक्षित रखा था। जरासन्ध की ललकार सुनकर वह युद्धभूमि में उतर आये। काल यवन इसी ताक में बैठा था। समय पाकर श्रीकृष्ण जी का पीछा करने लगा, किन्तु श्रीकृष्ण जी भयभीत का सा बहाना करते हैं और हिमालय की एक

भयावह गुफा में शरण लेते हैं। गुफा में पहिले ही बली राजा-मुचुकुन्द दानवों से युद्ध करके थकी अवस्था में गहरी नींद सोया हुआ था। श्रीकृष्ण सुअवसर पाकर अपनी "पीताम्बरी" उस पर डालते हैं तथा स्वयं गहरी अंधेरी में छिपे रहते हैं, नया कौतुक देखते हैं। काल यवन क्रोध वश सोये मुचुकुन्द को श्रीकृष्ण के भ्रम से लातें मार-मारकर उसे जगाने लगता है, राजा मुचुकुन्द ने ज्यूं ही आंखे खोलकर काल-यवन की ओर दृष्टि डाली, कालयवन झडिति राख की ढेरी बन गया। (स्मरण रहे - राजा मुचुकुन्द को भगवान शंकर से क्रोध भरी दृष्टि डालकर किसी को भी भस्मसात करने का " वरदान मिला था।)

गोनन्द /

कृष्णावतार के समय गोनन्द कश्मीर का राजा और जरासंधा का प्रिय संबंधी था। जरासंधा और श्रीकृष्ण की लड़ाई में गोनन्द श्री बलराम (श्रीकृष्ण जी के बड़े भाई) के हाथ मारा गया था। दामोदर (गोनन्द का ज्येष्ठ पुत्र) पिता के मरणोपरान्त कश्मीर पर राज्य करता हुआ सदा इसी ताक में बैठा था कि कब मैं यदुवंशियों से पिता के मारने का बदला ले लूं, पर वह गान्धार देश में स्वयंवर के समय श्रीकृष्ण के हाथ मारा जाता है। इस समय इसकी (दामोदर की) स्त्री गर्भवती थी। भावी बालक को राज्य का उत्तराधिकारी मानकर स्वयं श्रीकृष्णजी इसके राज्य-तिलक की प्रथा निभाने के लिए कश्मीर आ गये थे।

उन्होंने अपने हाथों दामोदर की गर्भवती स्त्री को राज्य सिंहासन पर बिठाया, और घोषणा की, भावी पुत्र राज्याधिकारी है।

इस कश्मीर यात्रा में श्रीकृष्ण ने अपने दोनों प्रियपुत्रों-प्रद्युम्न और साम्ब जी को भी अपने साथ कश्मीर लाये थे। यहाँ आकर साम्बजी ने मार्तण्ड में प्रतिष्ठित "भार्गशिखा, नामी तेज: पुंज का साक्षात्कार पाकर" साम्ब पञ्चाशिका-स्तोत्रावली" बनाई। निदान इसी तेज: पुंज को अपने में समाकर अन्त तक इसी की उपासना में लगते रहे।

"साम्ब पञ्चाशिका स्तोत्रावली" पुस्तिका कश्मीर पुस्तकालय तथा अन्यत्र भी उपलब्ध है। पर अब ----- ।।

प्रद्युम्न जी साम्बजी से कुछ आगे निकले, उन्होंने कश्मीर मध्यवर्ती प्रवरसेन पुर (श्रीनगर) में प्रद्युम्नपीठ-शारिका पीठ (हारी पर्वत) पर प्रद्युम्न-शिखर (चक्रेश्वर) की प्रतिष्ठा डाली, जिस पर अष्टादश-भुजा श्री शारिका श्याम सुन्दरी चक्ररूप में स्वयं विराजमान है। इसके उपलक्ष्य में शारिका माहात्म्य का यह श्लोक, सर्वत्र उपलब्ध और प्रचलित है।

प्रद्युम्न शिखरासीनां मातृचक्रोप शोभिताम्।
पीठेश्वरीं शिलारूपां शारिकां प्रणमाम्यहम् ।।

तब से प्रद्युम्न-पीठ (हारी पर्वत) की परिक्रमा कश्मीर जनता नित्य प्रति करती आई, सदा सद्गति पाती रही ।। पर अब......... ।

स्मरण रहे,

भगवान शंकर से स्वयंवर करने से पूर्व ही अष्टादशभुजा श्री शारिका भगवती ने जलोद्भव राक्षस को समूल नष्टकर, सती देश का अधिकार महामुनि कश्यप को सौंपा था, उन्होंने भी देवी की आज्ञा शिरोधार्य कर इस देश को बसाया। सती-देश कश्यप देश में और यहाँ की भाषा कश्मीरी भाषा में परिणत हो गई। कश्यप देश 'कश्यप मोर' बन गया। "मुर" कश्मीरी भाषा में घर को कहते हैं जैसे कोतर मोर" कोकर-मोर। इसी प्रकार बिगड़ते-बिगड़ते अन्त में कश्यप मोर को संक्षिप्त में "कश्मीर" नाम पड़ गया, जो अब तक प्रचलित है।

-- इति प्रथमो भाग : -----

.....00000.....

:: ::

कश्मीर दर्पण

द्वितीयो भागः

मंगलाचरणम्

1. धन्या कश्यप मेदिनी सुरसरिल्लोलोर्मिवत्स्याधांनी
यत्रोदेति परा मिधा सुविदुषां वाक् तन्तुभिः वैखरी।
पश्यन्ती विमलैः सुकाव्य वपुषि ज्ञानाञ्जनैः प्रेक्षणैः
बुद्धौ बुद्धिमतां सदा विकसति स्वैरं च सा मध्यमा ।।

धन्य-धान्य है महामुनि कश्यप की मानस-पुत्री कश्मीर नाम से विश्रुत प्रशंसनीय-कश्यपस्थली, जहाँ सुरसरिद् गंगाजी के लोल-लहरों से होड़ रखने वाली परा-रूपा सरस्वती मनीषियों (विद्वानों) के वाक्तंत्री से प्रस्फुटित स्वरों से "वैखरी" रूप को धारण करती है। निर्मल ज्ञान का अंजन नयनों में लगाती है। परिणाम में यही (परारूपा सरस्वती) पश्यन्ती का स्वरूप धारण कर सर्वत्र मनोहर काव्यों में ओत प्रोत हो जाती है। अन्त में इसी परा का मध्यमारूप मनीषियों की मनीषा में विलासित हो, स्वतंत्रता से दोनों पारमार्थिक तथा सांसारिक व्यवहार में विहार करता है।

"चत्वारि वाक् परिमिता पदानि" अस्यवाम सूक्त का वेदमंत्र भी इसी आशय को प्रकट करता है। तथा --

" तितउ मानसी ज्योतिः क्वेर्वाचं पुनाति या ।

सक्तुमिव सुधीरस्य भाति भद्रा सरस्वती ।।

तितउ-छलनी का नाम है, जो मानो मानसिक ज्योति है, यह कवि की वाणी को पवित्र एवं प्रज्वलित करती है । अर्थात् छलनी जैसे आटे को धोधे से अलग कर उसे खाने के योग्य बनाती है । ठीक इसी प्रकार सुधीर [धैर्यशाली] कवि की कल्याणमयी सरस्वती [वैखरी] मानव को सांसारिक सन्तापों से बचाकर आलौकिक आनन्द प्रदान करती है ।"

श्रुति भी इसी आशय को दोहराती है। यथा --

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीराः॰इत्यादि ।।

2. — स नः पायाद् येनानिन्ये वासुकिः निजहारताम् ।

तपः पायात् तनुकोपात् यः स्मरस्य जहारताम् ।।

जिस भगवान शंकर ने नागराज वासुकि, "जिसने अपनी पूंछ के तीक्ष्ण प्रहारों से सती देश की पश्चिम श्रृंखला को चीर और चूर-चूरकर सतीसर का सारा जल बहा दिया, जो सूखकर "सतीदेश" बन गया" को अपने कंठ का हार (कण्ठी) बनाया है। तथा तपस्या में अपने पराक्रम से बाधा न डाले, इस कारण जिसने अति सुन्दर कामदेव को अपने क्रोधानल में भस्मसात् किया, वे भगवान शंकर सदा हमारी रक्षा करें ।

स्मरण रहे = कश्मीर शिव प्रधान देश है, शैवाचार्यों की जन्मभूमि सदा यहीं रही है ।।

प्रथम पटल

सती देवी का प्रथम देहत्याग

परास्य शक्तिः विविधैव श्रूयते ।

प्रचलित धारणा है कि महामाया-जगदम्बा महाप्रभु-सदाशिव की अभिन्न-शक्ति होने पर भी प्रिय भक्तों के कारण नित नये-नये जन्म धारण करती हैं ।

"पंचस्तवी" का यह श्लोक इसका प्रज्वलित प्रमाण है ।

5, 28

यथा : "सुता दक्षस्यादौ किल सकल मातः त्वमुदभूः
सदोषं तं हित्वा तदनुगिरिराजस्य तनया ।
अनाद्यन्ता शम्भोरपृथगपि शक्तिर्भगवती
विवाहाज्जायासीत्यहह चरितं वेत्ति तव कः ।।

हे जगज्जननी माता, सर्व प्रथम (सृष्टि के आरम्भ में) आपने विधाता-ब्रह्मा के पुत्र दक्ष-प्रजापति के घर पुत्री के रूप में जन्म धारण किया था, पर किसी विशेष-कारण वश आपने पिता को दोषी जानकर उन्हीं के घर (मायके में) अपना पाञ्चभौतिक शरीर अपने ही तेज से भस्मसात किया, (प्रथम शरीर त्याग दिया) फिर दूसरा जन्म हिमालय के घर उनकी पुत्री (पार्वती) के रूप में धारण किया । यह भी सत्य धारणा है, कि आद्यन्तहीन भगवान शिव से आप यद्यपि आदि-शक्ति के रूप में सदा-- साथ साथ अनन्यभाव से रहती रहीं, तथापि विवाह-अवसर पर आपने उसका जायात्व (पत्नीभाव) सहर्ष स्वीकार किया ।

आपकी इस परिपाटी से सब आश्चर्य में ही घूमते रहते हैं । वस्तुत: आपके चरित्र से कोई भी "परिचित नहीं हुआ है, कौन क्या जाने सब आपकी माया से अपरिचित ही हैं।

जाया, जायते-उत्पद्यते अस्यामिति "जाया, (स्त्री-धर्मपत्नी) इस व्युत्पत्ति से जो अंग-स्पर्श द्वारा गर्भ धारण कर सन्तति उत्पन्न करती है, " जाया" कहलाती है । वस्तुत: पति ही पुत्र रूप में पत्नी से पुन: जन्म धारण कर लेता है।

प्रह्लाद ज्ञात → " अंगादंगात् संभवसि हृदयादभि जायते, आत्मा वै पुत्र नामासि०"
--(ऋग्वेद प्रमाण है)

यही कारण है, इस दोषनिवृत्ति के लिए ही नवजात के जन्म पर उसके ग्यारहवें दिन जातक का "जातकरण " तथा नामकरण, संस्कार किया जाता है । यह प्रथा अभी तक प्रचलित है ।

कथा विवरण

श्रीमद् भागवद् के आधार पर -

" संसार का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, जगन्माता सती का जन्म धारण क्योंकर हुआ ।" इत्यादि के प्रसंग में भगवान वेद व्यास जी का समाधान इस प्रकार प्रस्तुत है :-

प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ।
तस्यां ससर्ज दुहितृः षोडशामललोचनाः ।।
त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ।
पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ।।

भाग - 4,2,4,

प्राचीनकाल में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी के सुपुत्र दक्ष-प्रजापति का मनुप्रजापति की सुपुत्री प्रसूति से शुभ विवाह हुआ था । उसकी सन्तति [कन्याओं] में 16 वीं सती थी । समय पर उनका पाणिग्रहण भगवान शंकर से सम्पन्न हुआ, तब से सती जी भगवान शंकर की अनन्यभावेन सहधर्मचारिणी बन गई ।

भवस्य पत्नी तु सती भवं देव मनुव्रता ।
आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ।।
पितर्य-प्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ।
अप्रौढैवात्मनात्मान मजहाद् योग संयुता ।।

भाग - 4-2-5

सती जी अपने प्रियपति योगिराट् की योगिनी भाव में पूर्ण ब्रह्मचारिणी ही हो, अभी किसी की जन्मदात्री न बनी थी । यद्यपि उसमें योग्य, गुणवान् और शीलवान् पुत्र की लालसा जागी थी । एक ओर वह अभी अप्रौढ़ अवस्था में थी, अपरतः किसी विशेष कारण वश-पिता पुत्री में परस्पर वैमनस्य की आग भड़क उठी थी । परिणाम में सती ने पिता को संसार में कलंकित कर, वहीं [मायके में] अपनी योगाग्नि से पंच-भौतिक शरीर को भस्म का ढेर बनाया ।

"क्योंकर पिता पुत्री में परस्पर वैमनस्य की अग्नि भड़क उठी ।।

इस पर भगवान वेदव्यास का निर्वचन , यथा :-

" उदतिष्ठन् सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नय : ।
ऋते विरिञ्चिं शर्वं च तद्भासाक्षिप्त चेतसः ।।

भाग -4-2-6

प्राचीनकाल में एक प्रथा चलती थी, हिमालय की उपत्यका की विशाल वनस्थली में देवादिदेव महादेव के प्रधानत्व में ऋषि-मुनियों की सर्व प्रकार की गोष्ठियाँ हमेशा आयोजित हुआ करती थीं ।

दैववश एक दिन सब ऋषि-मुनि वनस्थली में उपस्थित थे । सब में विश्व कल्याण के लिए अनुष्ठान रचाने की प्रबल इच्छा हुई । "विश्वसृग" यज्ञ का अनुष्ठान करेंगे" । " ऐसी सबकी अनुमति सिद्ध हुई । अन्त में यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित भी हो गया । यहाँ तक कि भिन्न-भिन्न कार्य निमित्त विशिष्ट व्यक्तियों का चुनाव भी हो गया ।"दक्ष प्रजापति यज्ञ समापन में पूर्ण दक्ष हैं" । इसलिए सबकी अनुमति से सभा में उसको भी निमंत्रित करना स्वीकृत हो गया । समय पर निमंत्रित, अनिमंत्रित सबका मण्डप में आना शुरू हो गया । दक्ष प्रजापति ब्रह्माजी के आत्मज थे । भगवान भास्कर के समान देदीप्यमान थे । सभा में वे भी पधारे । उनके आने पर सब सदस्य [देवगण] उनके स्वागत में उठ खड़े हुए । परन्तु विरिञ्चि [ब्रह्माजी] तथा भगवान शंकर [महादेव] बैठे ही रहे । तो क्या हुआ, अभिमानी दक्ष-प्रजापति देवादिदेव महादेव का "उठ खड़ा न होना" न सह पाये , वे क्रोध में तमतमा गये, अनाप शनाप तक महादेव के नाम कहते गये, अन्त में ----

अयं तु देवयजने इन्द्रोपेन्द्रादिभिः भवः ।
सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ।।
- भाग 4-3-18

"अपनी महानता में घमण्डी, वस्तुतः देवगणों में अधर्म (निर्धन) यह भवानी-पति (भव) आज से किसी भी देवयज्ञ में देवताओं के साथ महायज्ञ का भाग प्राप्त न करे । सदा उससे वंचित रहे "

इस प्रकार महादेव के लक्ष्य शाप देकर स्वयं दक्ष मण्डप से वापिस निकलने लगे ।

ब्रह्माजी अकिंचितकर हो गये, करते भी क्या, वे दक्ष के जनक थे, देवादिदेव महादेव भी इसे अबोध बालक मानकर अनसुनी कर चुपकी साद लिये।

पर शाप का आह्वान सुनकर शंकर के प्रधान अनुचर नन्दिकेश्वर दक्ष के इस अशिष्टाचार को न सह सके । उठ उठे, और दक्ष को चुनौती देते हुए बोले :-

बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्ममतिः पशुः ।
स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ।।
- भाग-4-2-33

अरे! ओ पापी, शरीर पर ही आत्मबुद्धि रखने वाले, स्त्रीलम्पट, सदा-कामातुर-बुद्धिहीन पशु, अभी -अभी तुम भी पशुमुख (बकरी का मुँहवाला) बन जा, चाहे तुम देवयोनि में उत्पन्न भी क्यों न हो, पर देवाकृति में रहने के योग्य न रहो," ऐसा शाप दे गये ।

इस प्रकार चारों ओर का वातावरण परस्पर वैमनस्यता

में परिवर्तित हुआ। अशान्ति छा गई, सभा विसर्जित हुई ।

समय बीतता गया, पशुमुख से तंग आकर लज्जित बना दक्ष, अपनी कृति पर पछताता रहा । निदान अपनी प्राकृतिक अवस्था(पशुमुख से देवमुख) की पुनः प्राप्ति की लालसा में लालायित हो, उसने सब देवों की अनुमति से "बार्हस्पत्य" महायज्ञ का अनुष्ठान रचना निश्चित किया । देश-देश के देवगणों को निमंत्रण भेजा । ऋषि, महर्षि सब मुनियों का यज्ञ पर आवाहन हुआ । पर वास्तव में दक्ष (चिरकाल तक बकरी मुख से बुद्धिमें) पशुसमान ठहरे । उसने सकल देव समाज को निमंत्रण दिया । किन्तु अपने पूज्य जमाता भगवान-आशुतोष तथा प्रिय पुत्री सती-देवी को अपनी पूर्व वैमनस्यता के कारण महायज्ञ पर पधारने को बुलावा नहीं भेजा । वस्तुतः दक्ष महादेव की महानता और सतीदेवी की सतीत्व से पूर्ण परिचित न था । महादेव के वैभव से वंचित था । इस पर –

भक्त प्रवर श्री पुष्पदन्ताचार्य रचित महिम्नस्तोत्र का यह श्लोक अक्षरशः संगत है :-

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपति रधीश स्तनुभृता –
मृषीणा-मार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतु भ्रंश स्त्वत्तः क्रतुफल विधान-व्यसनि नो ।
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमाभिचाराय हि मखाः ।।

पुष्पदन्ताचार्य कहते हैं :- चाहे सम्पूर्ण क्रिया में प्रजापति-दक्ष कितने भी निपुण क्यों न हों, और स्वयंमेव यजमान भी हों, सारे ऋषि मुनि ऋत्विज (यज्ञकारक-पुरोहित) हों, यज्ञकार्य-वाहक (सदस्य) स्वयं देवगण ही हों,

बल्कि यज्ञ के फलदाता स्वयं देवादिदेव महादेव ही होते हैं । स्मरण रहे, उनकी अनिच्छा से सारे यज्ञ विघ्न में परिवर्तित होते हैं, अत: जिन यज्ञकार्यों में श्रद्धा का नितान्त अभाव हो, अन्त में वे सब यजमान के लिए ही अनिष्टकारी बनते हैं ।

इस वास्तविकता से दक्ष अपरिचित था । यज्ञ का समारम्भ हुआ, देश-देशों से देवी -देवता यज्ञमंडप पर आने लगे । ऋषि महर्षियों का तांता संधा गया । ऋत्विजों की वेद ध्वनियों से सारा गगन-मंडल प्रतिध्वनित होने लगा । उत्सव का पूर्ण समारोह प्रारम्भ हुआ । उधर कैलास-पर्वत पर बैठी सती अपनी समाधि में संलग्न(मग्न) थी । अचानक उसकी दृष्टि सुसज्जित विमानो पर जाते हुए देवताओं पर पड़ी ।

निदान उसे विदित हुआ, सारा देव समाज दक्ष —— प्रजापति दवारा सम्पादित "बार्हस्पति यज्ञानुष्ठान में भाग लेने के हेतु प्रिय परिवार सहित जा रहा है । बस, सतीदेवी मायके के प्रेम में उमड़ पड़ी । उससे न रहा गया । देखते ही देखते वह भी अपने प्रियपति भगवान शंकर से यज्ञ पर जाने के लिए अनुनय-विनय करने लगीं । ~~इसका पूर्ण अनुमान~~

और कहने लगी :—

प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य साम्प्रतं निर्यापितो यज्ञ महोत्सव: किल ।
वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थितामी विबुधा व्रजन्ति हि ।।
तस्मिन्भगिन्यो ममभर्तृभि: स्वकै:
ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षव: ।
अहं च तस्मिन् भवताभिकामये
सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ।।

• भाग - 4 - 3 - 8 - 6

कहने लगी, देवामदेव! आपके ससुर मेरे पूज्यपिता दक्ष प्रजापति एक

महान् "बार्हस्पत्य "यज्ञ रचाते हैं । ये सब देव इसी उत्सव पर सम्मिलित होने जा रहे हैं । यदि आपकी इच्छा हो, तो हम भी महायज्ञ पर जायेंगे और यज्ञ के पुण्यफल के सहभागी बनेंगे । अवश्य ही मेरी बहिनें भी अपने प्रियपतियों सहित इस महोत्सव पर पधारी होंगी । मेरी भी लालसा है कि मैं भी आपकी शुभ कामना के लिए दाय में प्राप्त अलंकारादि पहिनकर वहां जाने के योग्य बन जाऊं ।

॥ टिप्पणी /-

((यहां पर सतीदेवी ने प्रियपति को "वाम, अर्थात "वामदेव" नाम से सम्बोधित किया है । इससे ज्ञात होता है, सती ने भावी जन्म में भावी पति की सूचना अभी से दी है । भावी जनम में सती "शारिका" रूप में प्रादुर्भूत होती है, शारिका का परिणय 'वामदेव' से होता है । "गौरी-शंकर"- "शिव-पार्वती" के समान "शारिका-वामदेव" दम्पति सर्वत्र प्रचलित और प्रसिद्ध है ।।))

कथं सुतायाः पितृगेह कौतुकं निशाम्य देह॰ सुरवर्य नेंगते ।
अनाहूता अप्यभियान्ति सौहृदं भर्तुः गुरोः देहकृतश्च केतनम् ।।

भाग - 4-2-10

हे देववर । पिता के घर होने वाले किसी भी महोत्सव का सन्देश सुनकर पुत्री का हृदय वहां जाने के लिए लालायित होता है, क्यों न हो

सज्जनों की धारणा है, कि प्रियपति, पिता और गुरु के घर किसी भी उत्सव पर, चाहे वहां से निमंत्रण आवे या न आवे, प्रेमभाव से स्वयं वहां जाना श्रेयस्कर होता है।

अब अकिंचितकर हो महादेव सती से बोलते हैं। :-

त्वयोदितं शोभनमेव शोभने! अनाहुता अप्यभियान्ति बन्धुषु।

ते यद्यनुत्पादित दोषा दृष्टयो बलीयसा नात्म्यमदेन मन्युना।।

विधा तपो-वित्त-वपु-वय: कुलै: सतां गुणै: षड्भि: रसत्तमेतरै:।

स्मृतो हतायां भृतमान दुर्दशास्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम्।।

हे सुन्दरी, आपका यह कथन, "निमंत्रण न आने पर भी बन्धु जनों के यहां स्वयं जाना श्रेयस्कर होता है" सर्वथा यथार्थ है, पर वास्तव में जो प्रियजन हो, और जिन में देहाभिमान से क्रोधभरी-दोष-दृष्टि से विचार-बुद्धि नष्ट नहीं हुई हो। जो इसके विपरीत हो, इनके हां जाना सर्वथा अशुभसूचक होता है। यह सिद्ध वाक्य है-

" गुणा: गुणज्ञेषु गुणा: भवन्ति ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषा:"

प्रिये, इसके अतिरिक्त यह भी जान लो-" विधा, तपस्या, धन, सुन्दर-शरीर, यौवन तथा कुलीनता" वस्तुत: ये छ: गुण एक सज्जन के "गुण" होते हैं। यदि ये ही गुण किसी देहाभिमानी के पास हों, वहां ये सब "दोष" बनते हैं। और दुर्जन को विनाश का कारण बनते हैं, तभी वे महापुरुषों की तेज की गरिमा को नहीं सह सकते हैं। इतना ही नहीं, और भी सुनो :-

यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद् वचो
भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ।
संभावितस्य, स्वजनात् पराभवो
यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ।। भाग - 4-3-35.

(यहाँ पर "मरणाय" इस शब्द से भगवान द्वारा सती का मरना (भस्मसात होना) सूचित होता है)

हे प्रिये, सती, हाँ यदि तुम मातृ प्रेम से विह्वल हो मेरे कथन पर ध्यान न देकर वहाँ चली जाओगी, निश्चय रखो, मेरे विचार में तेरे लिए वहाँ जाना कल्याणकारी नहीं होगा, क्योंकि एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को अपने प्रियजनों द्वारा प्राप्त अनादर उसके लिए मृत्युतुल्य हो जाता है । कहा भी है :-

"संभावितस्य चाकीर्ति-र्मरणादतिरिच्यते"

अर्थात एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए किसी प्रकार की अपकीर्ति उसके लिए मरने से बढ़चढ़कर हानिकारक होती है ।

इतना कुछ समझाने बुझाने पर भी "सतीजी की यज्ञ पर जाने की अत्यंत लालसा भाँप कर" स्वयं महादेव ने अपने में इसका पूर्ण अनुमान किया, कि पतिगृह हो या पितृगृह, दोनों सती के लिए अनिष्ट-कल्पना के स्थान हैं, तो क्यों न इसे पितृगृह जाने की आज्ञा दे दूं ।

निदान चाहे अनमनस्कता से ही सही, महादेव ने सती को यज्ञ पर जाने की स्वयं अनुमति दे दी । बस आज्ञा मिलने की देरी थी :-

भाग — 4-5-10.

सा सारिका कन्दुक दर्पणाम्बुज श्वेतातपत्र व्यजन स्रगादिभि: ।

गीतायनै: दुन्दुभि: शांखवेणुभि: वृषेन्द्र मारुह्य विटंकिता ययौ ।।

भाग- 4-5-5

सती देवी दाय में प्राप्त सारिका -कन्दुक-दर्पण आदि वस्तुयें साथ लेकर वृषभराज नन्दी पर समारूढ हो बड़े चाव और उल्लास से मायके के यज्ञ मंडप की ओर चल पड़ी । परन्तु :-

तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्विमानितां दक्षकृते भयाज्जन: ।

ऋते: स्व स्वसृ: जननी च सादरा: प्रेमाश्रु कण्ठ्या: परिषस्वजुर्मुदा ।।

भाग - 4-5-7

सतीजी हुलास भरे मन से मायके पहुंचती है, पर दु:ख, है, उसकी सारी प्रसन्नता उदासीनता में परिवर्तित होती है, वहां अपने ही पिता दक्ष-प्रजापति के भय से प्रत्येक व्यक्ति उसे आदर की दृष्टि से क्या, अनादर की दृष्टि से ही देखने लगता है । हां, केवल माता प्रसूति और प्रिय बहिने, रुद्ध कंठ हो, प्रेमभरी आंखों से आंसुओं की धारायें बहाती हुई सती से गले लगती है, और कुशल अनामय पूछती है । इस प्रकार कुछ ढाढस बांधती सतीजी अब यज्ञ मंडप में प्रवेश करती है । तो वहां :-

अरुद्र भागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृत हेलन विभौ ।

अनादृता यज्ञ सदस्यधीश्वरी चकोप लोकानिव दक्षती रुषा ।।

भाग -4-5-6

सम्पूर्ण यज्ञ मंडप में सतीजी कहीं भी प्रियपति भगवान शंकर के नाम का यज्ञभाग नहीं देखती है, जबकि अन्य देवों के यज्ञभाग से सारा

भाग - 4-5-10,

मंडप अलंकृत था, इस प्रकार एकतः अपने प्रियपति को यज्ञभाग से वंचित देखना, अपरतः अपने को भी यज्ञ पर निमंत्रण न पाना, दोनों ओर पिता द्वारा अनादर की पराकाष्ठा अनुभव करती हुई धधकती क्रोधाग्नि में मानो संसार को भस्मसात् करती हुई, सती अपने पिता से यह बोलती है:-

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृद् प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ।
पवित्र-कीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ।।
भाग - 4-5-14

मेरे जन्मदाता पिता,

यह स्पष्ट है आप मेरे प्रियपति के महिमा से सर्वथा अनभिज्ञ और अपरिचित हैं, उनका शुभ नाम "शिव" है, शिव= शि + व, दो पूर्ण अक्षरों का समन्वय है । इसमें :-

"शि, शब्दस्तु गुणातीतो रूपातीतो "व" कारकः ।
रूपगुण विहीनत्वाद् "शिव" इत्यभिधीयते ।। अर्थात्

"शिव शब्द के "शि" का अर्थ है, "सत्व-रज-तम" इन तीन गुणों से परे होना, और "व" का अर्थ है, जिसका कोई रूप न हो ।

इस प्रकार निर्गुण निराकार, नीरूप होनेके कारण शिव को "शिव" कहते हैं । याद रखो "शिव" शब्द का एक बार भी उच्चारण तूल-राशि पर धधकती चिंगारी पड़ने के समान पापराशि का समूल-नाशक है । इन्हीं पवित्रकीर्ति और कल्याणकारी शिव से तू वैर करता है, क्या कहूं तुम कितने अमंगलकारी हो, सच्च मानो तेरा जैसा पापी पिता कोई न होगा :-

अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठ गर्हिणः ।
जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ।।
भाग - 4-5-18.

(जम्मीस्य मोहादि विशुद्धि मन्धा से जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ।।
भाग, 4-5-18

इसका कारण है मेरे जन्मदाता, निश्चय रखो, इसमें तिलमात्र भी संशय नहीं, कि तुम मेरे जन्म-जन्म के पतिदेव की निंदा करने, और अपमान करने पर तुले हुए हो। यह भी सत्य है, तुझ से ही मेरा शरीर उत्पन्न हुआ है, इतना तो मुझ पर ऐहसान है, पर नहीं, अब नहीं, मैं इस शरीर को धारण नहीं करूँगी, अवश्यं इसे त्यागूंगी ।

सत्य है, एक निन्दक के घर कोई सज्जन चाहे मोह से, अथवा अन्य किसी कारण वश यदि एक बार भी अन्न खायेगा, तो वमन करके ही उसे इस दोष का प्रायश्चित होता है, और "शुद्धि" होती है ।

बस सतीजी का कहना ही था, कि :-

1- ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद् गुरोश्चिन्तयती न चापरम ।
ददर्श देहोहृतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिनाग्निना ।।
2- कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदान मुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ।
शनैः हृदिस्थाप्यधियोरसिस्थितं कण्ठाद् भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत।।
भाग -4-5-23-24

सती ने जगद्गुरू अपने प्रियपति शिवशंकर के चरण कमलों का

साथ ही भविष्य-वाणी हुई, कि सती देवी अब हिमालय की उपत्यका में उनकी प्रियपत्नी मेनका-देवी से दूसरा जन्म धारण कर पुनः प्रियपति शंकर को ऐसे वर लेगी मानो जैसे कोई सोया हुआ व्यक्ति जागने पर पुनः अपनी चिर संचित शक्ति को वर लेता है ।

-------- इति प्रथमः पटलः -----

ध्यान अपने हृदय स्थल पर धर कर इसी पितृ अनुष्ठित यज्ञ मंडप के उत्तर दिशा की ओर अपना आसन जमा लिया ।

अपने अभ्यस्त योगाभ्यास से झटिति प्राण-अपान तथा-समान तीनों वायु को नाभि कमल से जागरित उदान वायु द्वारा क्रमशः हृदय-वक्षः-स्थल-कंठदेश तथा भ्रूमध्य स्थित द्विदल में एकीकृत कर, इस प्रकार प्रादुर्भूत धधकती ज्वाला में पापों सहित अपने पञ्च-भौतिक शरीर की पूर्णाहुति दे दी ।

देखते-देखते सती, सती (भस्म का ढेर) बन गई ।

सर्वत्र हा-हाकार हुआ :-

एवं दाक्षायिणी हित्वा सती पूर्वं कलेवरम् ।
जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मीनाया मिति शुश्रुम ।।
तमेव दयितं भूयः आवृङ्क्ते पति मम्बिका ।
अनन्य-भावैक गतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ।।

भाग - 4-7-58-59.

निदान झटिति सब जगह यह घोषणा फैल गयी कि -

दाक्षायिणी (दक्ष प्रजापति की पुत्री) ने पिता द्वारा प्रियपति पर किये गए अपमान को सहन न कर पिता के ही अनुष्ठित महायज्ञ में अपने शरीर की आहुति दे दी । अपने इस प्रथम शरीर को समाप्त किया। साथ ही भविष्य-वाणी हुई, कि सती देवी अब हिमालय की उपत्यका में उनकी प्रियपत्नी मेनका-देवी से दूसरा जन्म धारण कर पुनः प्रियपति शंकर को ऐसे वर लेगी मानो जैसे कोई सोया हुआ व्यक्ति जागने पर पुनः अपनी चिर संचित शक्ति को वर लेता है ।

-------- इति प्रथमः पटलः -----

अथ द्वितीय: पटल:

इस पटल में जगदम्बा भगवती सतीदेवी का अष्टादशभुजा "शारिका" रूप में द्वितीय जन्म का धारण, तथा कश्मीर देश के प्रवरेशपुर (श्रीनगर) में प्रद्युम्नपीठ (हारी पर्वत) पर "श्रीचक्र" रूप में लोकोपकार निमित्त समासीन होना, आदि का विवरण यथावत् वर्णित है ॥

1. बीजै: सप्तभिरुज्ज्वला कृतिरसौ या सप्तसप्तिः द्युति:
सप्तर्षि प्रणताङ्घ्रि पंकजयुगा या सप्तलोकार्ति हृत ।
कश्मीर प्रवरेश मध्य नगरी प्रद्युम्नपीठे स्थिता ।
देवी सप्तक संयुता भगवती श्री शारिका पातु न: ॥

(देवी पंचकीय शारिका सूक्त का मंगल श्लोक) तथा ----

2. प्रादुरासीद् जगन्माता वेदमाता सरस्वती ।
ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री कौमारी पार्वती शिवा .... ॥

(नन्दिकेश्वर संवादीय "भवानी-सहस्रनाम का पद्यांश)

दोनों प्रमाणित हैं - महामाया जगदम्बा-सतीदेवी गिरिराज-हिमालय के अधिष्ठातृदेव हिमवान की स्व धर्मपत्नी मीनावती के गर्भ से प्रादुर्भूत हुई, तथा इस द्वितीय जन्म में पुन: भगवान शंकर की अर्द्धांगिनी बन प्रद्युम्नपीठ पर "श्री-चक्र" रूप से विराजमान हो, जगत को अपनी दया दृष्टि से सन्तुष्ट करती रही :-

स्मरण रहे :- "यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम ।
तंतमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावित : ॥
— (श्री गीता जी)

प्रमाण है, कामना कभी छूटती नहीं । सदा अर्धांगिभाव से लिपटी

पंचभौतिक शरीर को छोड़ता है, उसी भाव (संस्कार) के अनुरूप वह पुनर्जन्म को

रहती है । यही बात भगवान जनार्दन गीता जी में डंके की चोट बताते हैं ।

चाहे कोई भी हो, जिस भाव से वह ओत प्रोत हो, जब अपने पुनर्जन्म की धारणा करता है । निश्चित है, अंतिम कामना ही दूसरे जन्म की आधारशिला होती है । माता सती के संस्कार तथा भाव सर्वथा भगवान शंकर से अनन्य भाव से जुडे हुए थे । अत::-

सत्या यदापितृवेश्मान्यनादर मासादितं भर्तृ स्नेह सक्तया ।
सतीसरस्यात्र जल प्रवाहे भस्मावशेषं स्वतनुं तत्याज ।।

(कश्मीर दर्पण)

सती देवी ने अपने पिता के घर अपमानित होकर जब योगबल से अपने शरीर को भस्मी बनाया था और शंकर भगवान ने उसे सतीसर में प्रवाहित किया था, तभी उसका यह संकल्प था कि भावी जन्म में मैं पुनः इन्ही निःसंग की संगिनी बनी रहूँगी । परिणाम यथार्थतः कामना जन्य हुआ, सती शंकर की अर्धांगिनी बनी ।

1. यैषा देवीत्युमा सैव कश्मीरा नृप सप्तम ।
2. आसीत्सरः पूर्णजलं सुरम्यं सु मनोहरम
सतीदेश इतिख्यातं क्रीडं मनोहरम ।।

(नील मत पुराण - 66 श्लोक)

नीलमत पुराण साक्षी है :-

सती देवी ही, उमा देवी है, कश्मीर देश में प्रकट होने से "कश्मीरा" इस नाम से भी प्रचलित रही है । कश्मीर निर्मल जल से लबालब एक सुरम्य और मनोहर सरोवर था । चिरकाल तक सतीसर, और "सती देश, परस्पर

एक नाम से अभिन्न थे, यही देवताओं के लिए "देवस्थली" और उनकी क्रीड़ास्थली बनकर रही।

यदा विनष्टे लोकेस्मिन् महादेवः स्वयंप्रभुः ।
आविर्भूत स्वेच्छया आपोभूत्स्वेच्छया लोके तिष्ठत्यस्मिन्समन्ततः ।।
सती देवी च तत्कालं तस्मिनौत्वं करोति हि ।
मनुः भविष्यंस्तस्मिन्तु सर्वं बीजानि मायया ।।
तदा स्थापयते राजंस्तां च नावं जगद् गुरुः ।
मत्स्यरूपधारो विष्णुः दन्ते कृत्वाय कर्षति ।।
आकृष्य नावं तां देवस्तस्मिन्पर्वत मस्तके ।
बद्ध्वा व्रजति भूपालः ह्यदृश्यतां तदा गतिम् ।।
(नील पुराण - 58-61)

नीलमत पुराण के अनुसार प्रलय के समय स्वयंप्रभु - "महादेव" ने जल का और सतीदेवी ने नौका का, रूप धारण किया था। तभी मनु प्रजापति ने सर्व प्रकार के बीजों का नौका में संचय कर, नौका को आगे चलाया। इतने में भगवान विष्णु मत्स्यरूप धारण कर नौका की रस्सी को अपने तीक्ष्ण दान्तों से पकड़कर उसे अपनी ओर खींचते रहे। यहाँ तक कि नौका पांचाल पर्वत के उच्चतर शिखरों से टकरा गई। अन्त में नौका को वहीं दृढ़ शिखरों से बांधकर स्वयं अलक्षित गति की ओर प्रस्थान कर गये। तो इस विषय पर:-

मत्स्यावतारे च मनुः स्व नौकां
नौबन्धा नाम्न्यत्र नगे बबन्ध ।

त्रिविक्रमे विष्णुपदार बिन्दं
तत्र स्थितं तत स्वरति क्रमाय ।।

"कश्मीर दर्पण" इस प्रकार उल्लेख करता है =:-

सर्वत्र विश्रुत है - सतीदेश (कश्मीर) के दक्षिण भूभाग में पांचाल पर्वत की एक महान श्रृंखला है, और कई आकाश चुम्बी शिखर है। जो "कौंसर-कोठर" नाम से अभी प्रसिद्ध है। यही "नौबंधन" के नाम से जगविख्यात स्थान भी है।

"दशरूप-रूपक, का दशावतार वर्णन साक्षी है, इसी श्रृंखला के ऊपरी भाग की अधित्यका पर चिरकाल तक दानवाधिपति राजा बलि का आधिपत्य रहा था, दानव ने अपने साम्राज्य में चारों ओर अपनी धाक जमाई थी। सब देव भयाक्रान्त थे। सर्वत्र हाहाकार मचा था। निदान वामनावतार धारण कर भगवान विष्णु ने राजाबलि से "तीन पांव", जितने में समा जायें" केवल इतनी सी भूमि दान में मांगी। बलि की समोद स्वीकृति पर भगवान त्रिविक्रम ने प्रथम दो पादों से "भू: तथा भुव:"दोनों लोक व्याप्त किये, तीसरे पाद से राजा बलि को पाताल धकेल दिया, जहां से उसका उद्धार सदा के लिए असम्भव हो गया। फिर भी देव की कृपा उस पर इतनी बनी रही। आज तक राजा बलि का शुभ नाम "अश्वत्थाम-बलि-व्यास-हनुमान आदि सप्तचिर जीवियों में अग्रगण्य है। अन्त में स्वर्ग (विष्णु लोक) में आरोहण (प्रस्थान करने) निमित जिस

(विष्णु) ने अपना कदम जमाया था, आज तक उस स्थान को

स्थान पर भगवान त्रिविक्रम "विष्णुपाद" कहते हैं। यह एक पवित्र तीर्थस्थान माना जाता है, सात वर्गमील का यह एक महान सरोवर है। इसी "विष्णुपाद" तीर्थ से "विश्रव" नाम की एक महानदी प्रवाहित होती है। सतीदेश के वामभागीय भूभाग को सींचती रहती है। परिणाम में यही -- उत्तरीय-भूभाग देवस्थली बना, और पार्वतीजी ने इसी स्थल को अपनी घोर तपस्या का स्थान चुन लिया। यही कारण है :-

सा दक्षपुत्री शिवलब्धिकामा नवजन्म लब्ध्वा नगराज कृष्णौ।
चकार सा तत्रैव महत्तपश्च जले सरन्ती महत्ता प्रदीप्ता ॥

(कश्मीर दर्पण)

दक्षपुत्री सती जो योगाग्नि से भस्म बन गई थी, भगवान शंकर ने जिसे सतीसर में प्रवाहित किया था, जिसे प्राक्तन वासना जन्य पुनर्जन्म में पुनः शंकर की अर्द्धांगिनी, पदवी की बलवती इच्छा थी। काई बनकर सतीसर में बह रही थी। "दैववशात नागराज हिमवान की धर्मपत्नी मान्य मीनावती, जो सतीसर में जलक्रीड़ा करती थी" को यह भस्मी दृष्टिगोचर हुई और झटिति "सारिका-सारिका" इस नाम से उसे आमंत्रित करती रही।

वास्तव में संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार "सरति-प्रवहति (गच्छति) के -जले" इस व्युत्पत्ति के अनुसार "जल-प्रवाह" में बहते

वस्तुजात को "सारिका- नाम से अभिहित करते हैं, तथा "स" और "श"

दोनों अक्षर एक समान प्रयुक्त होते है । अतः "सारिका" कहो या "
" शारिका", दोनों समानार्थवाची शब्द हैं ।

" एवं दाक्षायिणी हित्वा सती पूर्व कलेवरं
जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मीनाया मिति शुश्रम ।
तमेव दयितं भूय आवृंक्ते पति मम्बिका ।
अनन्य भावैक गतिं शक्तिः स्वप्तेव पुरुषाम ।। "

इस प्रकार प्राचीन भविष्यवाणी के फलस्वरूप भस्मी बनी सती ने पूर्व वासना जन्य हिमवान की स्व धर्मपत्नी मीनावती के गर्भ से पुनर्जन्म धारण कर पूर्वजन्म के प्रियपति आकांक्षित भगवान शंकर की अर्द्धांगिनी पदवी प्राप्त की । जैसे कोई सोया हुआ व्यक्ति अपनी चिर संचित शक्ति को प्राप्त करता है ।

(कश्मीर दर्पण)

स्मरण रहे :-

मार्तण्ड तीर्थस्य वरे सुतीर्थे साभर्गशाखा सवितुर्वरेण्या ।
आकारयामास च सारिकेति मीना सती तां तपसो निवृत्यै ।।

(कश्मीर दर्पण)

तेजोमयी सती की भस्मी सतीसर के जल प्रवाह में बहते -बहते जिस शैल खंड से ठकराकर रुक गई थी, वस्तुतः इसी स्थान पर महामुनि कश्यप की पत्नी अदिति का 13वां पुत्र, जो केवल मांस-मुर्दा-अण्डाकार पिण्ड था, तेजोमय-ज्योति प्राप्त कर गया था, जबकि उसके प्रथम (अग्रज) 12 पुत्र 12 सूर्यों में लय हो गये थे । यही कारण है - मृतात् अण्डात्-शरीरात् प्रादुर्भूतः " इस व्युत्पति से अर्थात् "पिंडाकार मृत शरीर से उभरा हुआ तेजोमय स्थान

" मार्तण्ड" कहलाने लगा । इसी [illegible] शैल (पर्वत) की अधित्यका पर भस्मीभूता तेजोमयी ज्योति भगवान भास्कर तक को अपनी ज्योति से प्रकाशमान करती हुई "भर्गशाखा" के शुभ नाम से व्यवहृत हुई । इसी तेजा पुंज भस्मी को मीनावती ने "सारिका" नाम से पुकारा था और इसी को अपने गर्भ में धारण कर समय पर प्रियपुत्री के रूप में जन्म दे दिया । संसार में शारिका भगवती का प्राद्रुभाव हुआ ।

1. सतीसरस्यत्र मृताण्ड खण्डाव् प्राद्रुर्बभूवात्र मह-स्वरीयः ।
प्रतिष्ठितो भर्गशिखा स्वरूपो मार्तण्ड तीर्थस्य गिरौ वरेण्यः ।।

तथा --2. पूर्व सतीसरसि मग्न मृताण्डखण्डात्
प्राद्रुर्बभूव रविरश्मिमयं महो यत् ।
मार्तण्ड" इत्यभिधेयः प्रथितं जगाम तीर्थम्
तत्रास्तु भार्गव रविभर्गशिखो स्तमेव ।।
तत्रैव पूज्या भर्गशिखा विभूषिता ।।

(कश्मीर दर्पण)

सर्वत्र सिद्ध है अनिर्वचनीय तेजः पुंज को "भर्ग" कहते हैं । इसी का मधुरगान "भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् " प्रसिद्ध इस पदावली का चारों वेद,-सम्पूर्ण-उपनिषद-सभी धार्मिक ग्रन्थ तथा ऋषि-मुनि आदि मुक्तकंठ से करते रहते हैं ।

"गायन्तं त्रायते " । इस व्युत्पति से अर्थात जो इस तेजः पुंज का मधुर गान करते हैं, महा गायत्री उनकी स्वयं रक्षा करती है । "महा-गायत्री उनकी स्वयं रक्षा करती है। महागायत्री यही तेजः पुंज है "

"गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्री त्वं - मुदाहृता" श्रुति साक्षी है ।

स्वयं प्रकाशमान महामाया-परमेश्वरी-भगवती-शारिका यही आवाङ्

मनसगोचर तेजः पुंज है। यही आद्यशक्ति महामाया है । यही "भर्ग-

शिखा" भगवती है । इसी का प्रतिष्ठा-स्थान "मार्तण्ड" क्षेत्र के पूर्ववर्ती

पर्वत शिखर पर विद्यमान है । अतः -

तां भर्गशाखां सविता वृणोति मार्तण्ड तीर्थस्य गिरौ स्थिता या।

नराश्च नार्याः पितृ भक्ति आजाः पिण्डं प्रयच्छन्ति स्व पूर्वजेभ्यः ।।

(कश्मीर दर्पण)

निश्चित है :-

मार्तण्डक्षेत्र सतीदेवी (भस्मी) के मृत शरीर से प्रादुर्भूत तेजः-पुंज भर्गशाखा का आधार-स्थल सनातन धर्मावलम्बियों का प्रधान क्षेत्र है । "भर्ग, सूर्यदेव का प्रधान नाम है, सूर्य क्षेत्र का सूर्यदेव से घनिष्ठ संबंध है । अतः प्रति तीसरे वर्ष जब भगवान सूर्य दो मासों की दो अमावस्याओं को एक साथ उल्लंघन करता है, एक मास अधिक रूप में "अधिमास" बनता है । पूर्व तथा पर प्रथा के अनुयायियों के अनुसार यही "अधिमास" भिन्न-भिन्न गणित रीति से भिन्न-भिन्न मासों में (मलमास तथा भानुमास) कहलाता है । सारी सनातन-जनता अपनी प्रिय प्रथानुसार इसी अधिमास में इसी पवित्र तीर्थस्थल (मार्तण्ड क्षेत्र) पर अपने पितरों के नाम पिंडदान करती है । (चाहे स्त्री हो या पुरुष छोटा हो या बड़ा) ।

धारणा यह है, यहां पर किया गया मुण्डन (केशाच्छेदन) तथा पिंडदान पितरों का मुक्तिमार्ग है ।

"मार्तण्ड" माहात्म्य का प्रधान शीर्षक:-- यथा -

" मार्तण्ड तोये पितरः प्रयान्ति पिंड प्रदानेन हि देवलोकम् "

~~पिंडं प्रदानेन हि देवलोकम्~~ । "

सर्वत्र विश्रुत है =:- माता सती महायज्ञ पर दग्ध हो भस्मी बन गई थी । दग्ध शरीर को शान्ति निमित शीतल प्रदान हिमालय की उपत्यिका में मीनावती के गर्भ में पुनः जन्म धारण कर पार्वती नाम प्राप्त किया । चूँकि इसे शंकर से पुनः मिलन की अत्यन्त लालसा थी, अतः पार्वती ने घोर से घोर तपस्या करना आरम्भ की, यहाँ तक अपने शरीर की कोमलता का परवाह न कर कठोर शिशिर काल में आकण्ठ (गले तक) शीतल जल में रहना, तथा घोर घाम (ग्रीष्म-काल) में पंचाग्नि-तपना स्वीकार किया । इस प्रकार घोर तपस्या करती रहीं, स्मरण रहे, तथापि पार्वती का मुख-पंकज खिलता रहा, दीप्तिमान और प्रकाशमान रहा । इस विषय में कहा है :-

प्रजापते र्यज्ञभुवि सती पुरा तत्याज दक्षात्प्रभवं कलेवरम् ।
प्रादुरभूदत्र हिमाद्रि कुक्षौ मार्तण्ड तोये तनुताप शान्तये ।।

~~अथवा~~

तथा - योगाग्निना दग्ध कलेवरा सती हेमन्त-काले जल-मध्यमा-भक्त ।
ग्रीष्मे परं पंच महाग्निमध्ये तेपे तपः सा शिवलब्धि, काम ।।

(कश्मीर दर्पण)

वस्तुतः

स्वयं प्रभां भर्गशिखा मनन्तां त्रिनाभि चक्रे महसा प्रदीप्ताम् ।
उद्भासयन्ती रवि-सोम-दीपान् विश्व प्रतिष्ठा-मजरामनर्वाम् ।।

(कश्मीर दर्पण)

जगन्माता भर्गशिखा का तेज स्वयं-प्रभा (स्वयं प्रकाशमान) है। सबको यह प्रकाशित करता है, किसी के प्रकाश से प्रकाशित नहीं होता है, अनन्त रूपों में प्रकाशमान इसी का तेज त्रिनाभिचक्रों (ग्रीष्मकाल-वर्षाकाल तथा शीतकाल) में ओतप्रोत हो, संवत्सर चक्र को घुमाता है। यही भर्गतेज सूर्य-चन्द्र और अग्नि को दीप्तिमान बनाता है, सर्वत्र विश्व में प्रतिष्ठित है, अजर है, अमर है, समूचे विश्व में अप्रतिहत है।

इसी का गुणगान भगवती श्रुति भी "अस्यवाम-सूक्त" में इस प्रकार करती है :-

"सप्त युञ्जन्ति रथ-मेकं चक्र-मेक मश्वो वहति सप्त नामा ।
त्रिनाभि चक्र मजर-मनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः ।।

अर्थात्:

वैदिक परिकल्पना के अनुसार संवत्सर एक-चक्र वाला रथ है। इसमें ग्रीष्म-वर्षा और शीत-काल की तीन नाभियाँ हैं, निषाद आदि सप्तस्वर इसके सात घोड़े हैं। स्मरण रहे, इस अद्भुत रथ को यही भर्गशिखा तेज

हांकता है, और वह दिन रात घूमता रहता है। यही इसके महिमा की पराकाष्टा है। इतना ही नहीं --- " तच्च भर्ग तेज: स्वर्लोक वासिभि: देवै: जलोद्भव विनाशाय समाराधित: प्रार्थितच्च। हिमालयस्या-र्द्धांगिनी मीनावती जलोद्भव राक्षसस्य जलोद्भव द्वारं सती-देव्या मृत शारीरेणा पिधानं चकार। तच्च भर्गशिखा-वा-भर्गशाखा स्वरूपं प्रादुर्भूतं तेज: -- सर्वमंगलकरं मार्तण्ड प्रवर-तीर्थाद् [redacted] समाजगाम, प्रद्युम्नपीठस्था-शारिका-पर्वताख्य गिरौ। तत्र अष्टादशभुजं रूपं धृत्वा स परिवार मत्र सम्मुपविष्टं बभौ।

द्वारं तदीयं शिलया पिधाय सती सरस्यत्र जल प्रवाहे।
सा शैल-पुत्री नव द्वि भुजाढ्या श्री शारिका के सरणाद्बभूव।।

(कश्मीर दर्पण)

सतीदेश जो सतीसर नाम से प्रसिद्ध था, जलोद्भव राक्षस का आवास भी था, चूंकि यह सरोवर हिमालय के ठीक मध्य में था, इसके प्रत्यन्त-पर्वत सदा छायावृक्षों फलों और फूलों से समाच्छादित होते थे। अत: ऋषि मुनि और महर्षियों की यह तपश्चर्या की वनस्थली थी, यह स्वर्गाश्रम था, तपस्वियों का तपोवन था, सभी तपस्वी यहीं तप: साधना में लीन रहते थे। दूसरी ओर यह राक्षस का निवास भी था, अत: उसका भय भी यहां सदा रहता था। क्योंकि समय पाकर जलोद्भव मुनियों को अपना कलेवा भी बनाता था। इस कारण मुनियों की दयनीय दशा से दुखी हो स्वर्लोकवासी देव उभय प्रथा से, एक ओर

मुनियों का राक्षस से त्राण (बचाव) , दूसरी ओर राक्षस के समूलनाश की युक्ति ढूंढने में तनमन से लगे थे । निदान ब्रह्माजी के निदेशानुसार महामुनि-कश्यप तथा सब देव महामाया भार्गशिखा के शरण आये, गद्गद् हो, उनकी स्तुति की, और स प्रश्रय प्रार्थना की । माते:---

पुत्र चाहे कुपुत्र भी बने, पर मां " मांत्रायते इति माता " इस व्युत्पति से "मेरी रक्षा करने वाली-माता" पुत्रों के लिए सर्वथा रक्षा-कारिणी तथा मंगलकारिणी होती है । यही कारण है, भक्तों के भक्ति भाव से दयार्द्र हो तेजः-पुंज जगन्माता भार्गशाखा भगवती ने भक्तों की मनोभिलाषा की पूर्ति निमित्त अपने उद्भव स्थान "मार्तण्ड-शिखर से " प्रद्युम्न-शिखर" (हारी पर्वत) पर प्रस्थान किया।

इसी (जलोद्भव-विनाश, तथा प्रिय भक्तों का परित्राण) आशय-वश भगवती अष्टादश भुजा श्री शारिका प्रद्युम्न पीठ पर प्रादुर्भूत हुई ।

तदुपरान्ते श्री कृष्णास्य पुत्रः प्रद्युम्नावतारोऽत्र कश्मीर देशे पित्रा सह समागत्य श्री शारिका देव्यः प्रतिष्ठां चकार ।

निदान "मदनदाह, के समय भस्म बने कामदेव ही कालान्तर मे भगवान श्रीकृष्ण के दार महाराज्ञी "रुक्मणी" के गर्भ में --- "प्रद्युम्न" नाम से उत्पन्न हुए थे और राजा दामोदर के राजत्व में पिता श्री कृष्णजी के साथ कश्मीर पधारे थे ।

स्वयं श्री कृष्णजी को गर्भवती दामोदर की स्त्री के भावी पुत्र

को राज्य का उत्तराधिकारी बनने हेतु उसे राज्याभिषेक की प्रथा निभाने के लिए प्रतिज्ञानुसार कश्मीर अवश्यमेव आना था । "

इसी अवसर पर प्रद्युम्न जी ने स्व नामांकित " प्रद्युम्नपीठ" "चक्रेश्वर" पर भगवती श्री शारिका की प्रतिष्ठा स्थापित करली , जो अब तक यथावद् विद्यमान है ।।

इति द्वितीय: पटल:

कश्मीर दर्पण

अथ तृतीय: पटल:

इसमें :-

कश्मीर देश का संसार में प्रादुर्भाव, तथा इसी देश में अष्टादश-भुजा भगवती शारिका देवी के विकास का विस्तृत विवरण है।

प्राचीन धारणा है :-

"युगान्तकाल प्रति संहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकास मासत"

जब-जब किसी भी युग का अन्त (प्रलय) समीप आता है, जगत्पति भगवान् विष्णु सम्पूर्ण चराचर जगत् को अपने में पूर्णतया विलीन कर शेष शय्या पर अपने ही ध्यान में निमग्न रहते हैं। यथा ---

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादि भूतं गतेषु।
व्यक्ते, व्यक्तं काल वेगेन याते भगवानेक: शिष्यते "शेष" संज्ञ: ।।

श्रीमद्भागवद् के कथनानुसार "शेष संज्ञ:" स्वयं शेष रहकर और "शेष" नाम पाकर (प्रलय पर बिना इनके और कुछ शेष नहीं बचता है) शेष शय्या पर योग-निद्रा में रहते हैं। तो बस, यही मानो संसार में प्रथम युग की 'इति' (प्रलय) और नवीन युग का 'अथ' (जगत् का पुन: यथावद् निर्माण) प्रारम्भ होता है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते" श्री गीताजी प्रमाण है :-

संसार में प्रत्येक को अपने-अपने आश्रित काम पर पूर्ण अधिकार है, चाहे नियत काम बड़ा हो या छोटा। सम्पूर्ण जगत्, इसकी सृष्टि-स्थिति और प्रलय,

ये भी अपने रूप में कार्य है । त्रिकारण (ब्रह्मा-विष्णु और महेश) इनके अधिकारी हैं । इन पर ही इनका उत्तरदायित्व है । यही कारण है :-

1. परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः ।
स एकासीदिदं सर्वं कल्पान्ते नान्यत्किञ्चन ।।

2. तस्य नाभेः समभवद् पद्मकोषो हिरण्मयः
तस्मिन्जज्ञे महाराजः स्वयंभूश्चतुराननः ।।

3. मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ।
दाक्षायिण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत्सुतः ।।
(नीलमत पुराण)

भगवान विष्णु योगनिद्रा से मुक्त होते हैं, जगद् का उदय होता है । शेष शय्या पर इनके नाभिनाल पर स्वर्णमय कमल प्रस्फुटित होता है ।और स्वयंभूः चतुरानन - ब्रह्मा जी यहीं पर प्रकट होते हैं । - स्वयं ब्रह्मा जो सृष्टा हैं, जगत की उत्पत्ति इन्हीं के अधिकार में है । यही परम्परित धारणा सदा से चली आई है ।

सर्गारम्भ में सर्वप्रथम सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी से उनके मानस-पुत्र महामुनि-मरीचि उत्पन्न हुए थे, मरीचि से प्रजापति कश्यप । उनकी दो स्त्रियां थी :- "दिति और" अदिति । दिति से दैत्य (राक्षस) और अदिति से देवों की परम्परा चली आई । देवों में अग्रज-रूपेण भगवान भास्कर प्रादुर्भूत हुए ।

कश्यपो ब्राह्मणः पौत्रः वैवस्वत मनोः पिता ।
तेनायं वर्धितो देशः कश्मीराख्यः पुरा किल ।।

(नीलमत पुराण)

प्रासंगिक "कश्मीर" इन्हीं ब्रह्मा जी के पौते महामुनि-कश्यप द्वारा बसाया प्रदेश है । पूर्वकाल में इसे "सतीदेश" कहते थे । सतीदेश सुन्दर और स्वच्छ जल से लबालब ﴾ जल से भरा ﴿ सरोवर था । "येषा-देवी-उमा सैव" इस संकेत का पूर्ण विवरण इसी के दूसरे पटल में स्पष्ट है ।

कं वारि हरिणाश्मानो देशादस्मा दया कृतम् ।
कश्मीराख्य-स्ततो जातों नाम लोके भाविष्यति ।।
﴾ नीलमत पुराण-श्लोक ﴿

नीलमत-पुराण के आधार पर "कश्मीर " की निरूक्ति यथा :-

"कं- जलम् अश्म-शिला﴾पत्थर﴿ ईरति-गच्छति﴾प्रवहति﴿" इस व्युत्पत्ति से शिलाएं तोड़-फोड़कर जिसके जल का निकास हुआ है । "कश्मीर "कहलाता है ।

वास्तव में सिद्ध है, भगवान् विष्णु ने वराहावतार में "सतीरूपा" नौका, जो "शिव" रूप जल में बह रही थी, अपने तीक्ष्ण दांतों से उसकी रस्सी पकड़कर कौंसिर के कोठरों से बांधा दी थी । यह स्थान अभी "नौ बंधान" नाम से प्रचलित है । "कश्मीर-भूमि को जो सतीसर के अगाध जल में निमग्न थी, अपने उन्नत दन्ताग्रभागों से उभारकर उसे नागराज-वासुकि के अनन्त फणों पर स्थिर कर लिया । उधार वासुकि जी ने अपने बलिष्ट पूछ के लताड़ों और प्रहारों से आधुनिक "वाराह-मूला" निकट पश्चिमीय पर्वतमाला को खण्डश: और चूर-चूर कर, सरोवर के अगाध जल को इन्हीं दरों से प्रवाहित किया । सारा जल सूखा गया । सतीसर -सतीदेश बन गया । महामाया अष्टादश-भुजा भगवती ने प्रतिज्ञानुसार इसे महामुनि कश्यप को

....4

समर्पण किया । कश्यप मुनि के परिपालन और परिवर्द्धन से सतीदेश-कश्यप-देश में परिवर्तित हुआ, जो समय परिवर्तन से अन्त में "कश्मीर" नाम से सर्वत्र प्रख्यात हुआ । इसके प्रत्यन्त-पर्वत सदा फूलों और फलों से लदे रहते थे । सारा वातावरण सुहावना तथा सुखकारी था । यही कारण था कि ऋषि-मुनि, सब बहुल तथा इसी वाटिका में तपश्चर्या निमित रहा करते थे । कश्मीर देश प्राकृतिक शोभा का आगार माना जाता था ।

सौन्दर्यस्य पराकाष्टा स्वयं कश्यप नन्दिनी ।
कश्मीरा रम्या सदाभाति सदानन्दा गृहे गृहे ।।

(नीलमत पुराण)

महामुनि कश्यप की मानस पुत्री "कश्मीरा, प्राकृतिक शोभा से ओत-प्रोत हैं । घर-घर यहां आनन्द की खान है, सर्वत्र यहां सौन्दर्य की पराकाष्टा है । इसकी शोभा [illegible] (छटा) का वर्णन जितना भी किया जाये, यथार्थ में कम है । इतना ही नहीं, कविवर पण्डित-कल्हण (कश्मीर-राजतरंगिणी कार) मुक्त कंठ से कश्मीर के वर्णन में लिखते हैं :-

विद्या वेश्मानि तुंगानि कुङ्कुमं सहिम पयः ।
द्राक्षेति यत्र सामान्य मस्ति त्रिदिव दुर्लभम् ।।

(राज तरंगिणी)

अर्थात भगवती वाग्वादिनी सरस्वती का विकास, गगन चुम्बी ऊंचे-ऊंचे महल, केसर की प्रफुल्लित क्यारियां, बर्फीला-शीतल और स्वच्छ जल अति मधुर (बीज रहित) अंगूर आदि फल, सब वस्तुएँ एक से एक न्यारी कश्मीर देश में सर्वत्र सुलभ है । "सूक्ष्मदृष्टि से यदि देखा जाये। सबका एक साथ

होना, एक साथ मिलना, स्वर्ग में भी असम्भव है । पर यहां सम्भव है, इसी कारण कश्मीर को स्वर्ग की समानता देकर उसे "भूस्वर्ग" नाम से व्यवहृत किया गया है। होगा ।

स्वयं "कविवर-बिल्हण" स्वरचित "विक्रमांक देव चरित्र" में इसी (कश्मीर-सुषमा) को लक्ष्यकर कितना मधुर लिखते हैं :-

सहोदरा कुंकुम केसराणां भवन्ति नूनं कविता विलास: ।
न शारदा देश मपास्य दृष्ट स्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोह: ।।

(विक्रमांक देव चरित्र -1-29)

देखिये,
एक ओर यहां का कविता-विलास, उसके नाज नखरे, दूसरी ओर केसर की क्यारियों का विकास, निश्चय से मानो, ये दोनों आपस में सगे भाई-भाई है । इन दोनों का समन्वय विना कश्मीर के अन्यत्र कहीं न देखा है और न कहीं सुना है । इसके अतिरिक्त कश्मीर आदिकाल से कमला (महालक्ष्मी) का निवास स्थान रहा है । यद्यपि महर्षियों ने उसे स्वीकृति नहीं भी दी थी ।

धूल्याविलितमवलोक्य गजं भवानी
लीलासु तस्य रमते कुरुते स्मितं च ।
दोषं विहाय ममता रमते गुणेषु
कश्मीरजस्य कटुतापि नितांत रम्या ।।

(कश्मीर दर्पण)

कश्मीर लक्ष्मी का निवास माना है । श्री भगवती महालक्ष्मी अपने प्रिय वाहन गज पर आरूढ हो यहां पधारी हैं ।

सिद्ध हैं - महालक्ष्मी के अन्य प्रिय नाम-इन्दिरा, कमला, पद्मालया है । कश्मीर-विशेषतया-यहां के सरोवर कमलों से लदे रहते हैं, जो कि सदा विकसित और प्रफुल्लित होते हैं, निश्चित है कश्मीर लक्ष्मी जी का प्रियस्थल है । किंवदन्ती- है, कि श्री लक्ष्मी स्वस्थचित्त हो, कमलापति भगवान विष्णु के संग शेष शय्या पर विश्राम करने से यहां रहना अधिक पसन्द करती थी । धूलिधूसरित हाथी पर आरूढ़ हो यहां के कुसुमित वनों का विहार करती थी । यह सत्य है हाथी सदा स्नानोपरान्त अपनी बृहत्काया को धूलि से धूसरित करता है, पर माता-लक्ष्मी उसके धूसरित भाव पर जरा भी ध्यान नहीं देती हैं। बल्कि उसकी लीलाओं पर सदा रीझती है और सदा हंसती हैं । इससे उसकी महानता पर किंचिदपि न्यूनता नहीं आती है । स्पष्ट है, गुणीजन गुणियों के गुणों पर सदा रीझते हैं, उनके दोषों को और तकते भी नहीं। यही कारण है कश्मीरजात (केसर) में चाहे कितना भी कड़वापन क्यों न हों, पर गुण-बाहुल्य से देवों के माथे का तिलक बन, सर्वोच्च पदवी पाता है ।

धूल्यावलिप्तस्य गजस्य पृष्ठगं
चकार पद्मा निजपाद पंकजम् ।
गजस्य पृष्टे मुनि कश्यपपुरं
जगाम चारूह्य सुरैः सु पूजिता ।।

(कश्मीर दर्पण)

श्री महालक्ष्मी रूपा अष्टादश भुजा श्री शारिका भगवती अपने इसी धूलि-धूसरित गजराज पर आसीन हो कश्मीर में प्रादुर्भूत हुई ।

सबों ने प्रसन्नचित उसका स्वागत किया । सारा देव-समाज अहमहमिकया निवास हेतु यहीं आने लग गया । यहां तक कश्मीर त्रिकोटी देवताओं का वास स्थान बन गया, और अब तक प्रद्युम्न-पीठ (शारिका पर्वत-शिखर) त्रिकोटी देवताओं का घर मानकर ही पूजा जाता है । निश्चित है - विकसित गुलाबों से समाच्छन्ना एक कली अनन्त कांटों के आक्रमण से शुन्य नहीं होती है ।

बभूव पूर्वं जलपूरिता या
कश्मीर भूमि: प्रलयस्य चान्ते ।
सतीसर स्तन्मुनय: सदाहु:
जलोद्भवाख्यस्य निवास भूमि: ।।
जलोद्भवस्तत्र पिशाच राणा
सुखं स पूर्वं मुनि मांसमश्नन् ।
चकार राज्यं जल संस्थितो व्यसौ
सतीसराख्ये सह राक्षसेन्द्रै: ।।
(कश्मीर दर्पण)

कश्मीर भूमि--जिसका विशिष्ट वर्णन दूसरे पटल में निर्णीत है, जल से परिपूर्ण सरोवर था । सतीसर नाम से विश्रुत था । दुर्भाग्य से जलोद्भव नामी राक्षसों का राजा इसके बीचों बीच पाताल भूमि पर अन्य राक्षसों समेत अकण्टक राज्य करता था, और समय-समय पर तटवर्ती मुनियों पर आक्रमण कर उनकी मांसपेशियों से जिह्वा का स्वाद लेता था ।

सब देव अकिंचित कर हो उसका बाल भी बांका न कर सकते थे ।

भयाक्रान्त हो केवल "त्राहि-त्राहि" मचा रहे थे, यहां तक कि देश त्याग पर विवश होने लगे थे । आजकल भी कश्मीर की यही अवस्था है । [जैसे 1990 ई. में पाकिस्तान से भयाक्रान्त हो कश्मीर वासी देश से पलायन कर गये है]

सब देव क्यों कर अकिंचित कर (नपुंसक) बने थे ?

समाधान ----- यथा ----

जलोद्भव: प्राप्तवरों महेशात्---

पाताल- राजा दनुजै: समेत: ।

तत: स देवर्षि-मुनीश्वरादीन्

कदर्थयामास तटे स्थितान्तान् ।।

(कश्मीर दर्पण)

पौराणिक गाथा है --

अत्यंत-उत्कट-पूर्वकर्मानुसार पिशाच जाति के राजा जलोद्भव ने पौलस्त्य से भी कठोरतम, वर्षों पर्यन्त अनाहारी हो, एक पादांगुष्ठ स्थित द्वारा इतनी घोरतम तपो साधना की थी कि देवादिदेव, महादेव-आशुतोष उसकी दृढ धारणा से उस पर इतने आसक्त हो गये थे, कि स्वयं उसे "वर" मांगने पर विवश किया । बस, अंधा क्या चाहें दो आंखें, पिशाच की साधना सफल हुई, वह फूले न समाया । एक पादांगुष्ट पर स्थित हुए उसने इष्टदेव से यह वर मांगा, कि प्रभुवर । संसार की वर्तमान जनगणना में कोई भी मेरा प्रतिद्वंदी (संहारकारी) न बने । साधनाप्रिय महेश उसकी साधना से वशीभूत हो बिना विचारे अपने श्रीमुख से "तथास्तु"

कह गए । निदान, परिणाम क्या हुआ, सबको विदित है । प्रत्यक्ष है, जलोद्भव अब किसी के भय की परवाह न करता रहा । निर्भय हो, साधारण मनुष्य तो किस गणना में, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के संहार पर तुल गया । सर्वप्रथम अपने कार्य का श्रीगणेश सरोवर तटवर्ती मुनियों के संहार से करने लगा, अपनी भूख की पारणा उनके ही मांस से प्रारम्भ किया । चारों ओर आतंक फैलने लगा, सर्वत्र "त्राहि-त्राहि" की धूम मच गई ।

ऋषिः कदाचिच्चरन् धरित्रीं-
मजात्मज स्तत्र समाजगाम ।
दृष्ट्वा च तेषां कदनं मुनीनां
व्यथां परामाप सः काश्यपात्मजः ।।

(कश्मीर दर्पण)

समय परिवर्तनशील है, किसी की भी एक जैसी दशा सदा नहीं रहती है । दैवयोग से महामुनि कश्यप तीर्थयात्रा करने के हेतु भूमण्डल की परिक्रमा करते-करते एक दिन सतीसर पहुंच गए । यहां के तपस्वियों से मिले । अपने तीर्थाटन के आशय से उन्हें परिचित किया, उनकी दुःखभरी कथा सुनी। उनकी दुर्दशा (राक्षस द्वारा किया जाता अत्याचार) देख और सुन उनसे न रहा, सहमा गया । कुछ काल पर्यन्त अचेत अवस्था में पड़ा रहा । निदान तीर्थयात्रा यहीं समाप्त कर ली। तपस्वियों की व्यथा भरी कथा सुनी-अनसुनी कर सीधा सत्यलोक की ओर प्रस्थान कर गये ।

यमामनन्त्यात्म भुवं पुराणं

सनातनं त्रिविष्टप मूर्ध्नि संस्थम्।

स तत्र गत्वा कश्यपो महात्मा

जगाद पित्रे वदनं मुनीनाम् ॥

(कश्मीर-दर्पण)

पुराण सिद्ध है :-

सम्पूर्ण जंगमंडल के सर्वोपरि सप्तलोकों में मूर्धान्य सत्यलोक है । त्रिविष्टप वहां का मुख्य स्थान है । जगद्-स्रष्टा ब्रह्माजी वहीं निवास करते हैं । महामुनि कश्यप वहीं कमलासन पर विराजमान पितामह ब्रह्माजी के शरण में आए । विचलित मन से बद्धाञ्जलि हो भूलोक-वासी मुनियों की दुर्दशा तथा जलोद्भव दवारा कृत अत्याचार के बखान से उन्हें सर्वथा परिचित किया । भूलोक का सम्पूर्ण इतिवृत्त सुनाया : उत्तर में :-

उवाच ब्रह्मा मुनि-कश्यपाय

स्तोत्राणि पंच स्व मुखेन तत्र ।

श्री शारिकाया: विजय प्रदाय

सरोवरा न्नीर विनिर्गमाय ॥

तथा :-

जलोद्भव -प्राण विनाशनाय

क्षेमाय भूत्यै, भवतारणाय ।

ज्ञानाय सिद्ध्यै मल नाशनाय

विश्वस्य [illegible] शान्त्यै खल निग्रहाय ॥

(कश्मीर दर्पण)

बस, अपने पौत्र-कश्यप के मुख से भूलोकवासी मुनियों की व्यथा भरी कथा सुनकर पितामह ब्रह्मा ने पलकभर में त्रिकारण (अपने समेत विष्णु और महेश) की सभा का आयोजन किया । सर्व सम्मति से पारित हुआ कि चिन्ता करने का अवसर नहीं, केवल जगदम्बा, अष्टादश भुजा श्री शारिका भगवती की प्रतीक्षा है, उसकी आराधना अभिप्रेत है, भगवती श्री शारिका स्वयं अन्य "उमा-कामा आदि देवी सप्तक के साहाय्य से सतीदेश को क्या, सम्पूर्ण जगत को सर्वथा ईतियों से रक्षा करेगी, उद्धार करेगी । अब प्रश्न है भगवती की आराधना का । इसके लिए स्वयं चतुरानन ब्रह्मा जी ने अपने श्रीमुख से भगवती श्री शारिका के "पांच स्तोत्र" (जो अब तक "पंचस्तवी" के शुभनाम से जनविश्रुत है, देवी भक्त अब भी नित्यप्रति जिसका पाठ करते हैं, और देवी शारिका को भक्ति के प्रसून चढ़ाते हैं,) बनाये, और महामुनि कश्यप को सुनाएं और उसे समर्पण किए । साथ ही यह विश्वास दिलाया, कि निश्चय से इनके पठन और निदिध्यासन में, जलोद्भाव राक्षस का सर्वसंहार, जल-पूर्ण सरोवर का जल निकास, सतीदेश का उद्धार, कल्याण की प्राप्ति, ज्ञान की वृद्धि, पापों का नाश, विश्व की शांति तथा दुष्टजनों का सर्वथा निग्रह सर्वरूपेण अन्तः निहित- है ।

ततस्तुता सा मुनि कश्यपेन
प्रादुर्बभूवात्र वरान्नस्था ।
आश्वासयामास च कश्यपाय
कश्मीर - देशे सदनुग्रहाय ।।

(कश्मीर दर्पण)

:: ::

बस, पितामह ब्रह्माजी के वचनामृत सुनने की देरी थी । ऋषिमुनि और देवादि सब वहीं एकत्रित हुए, और महामुनि कश्यप के संग जगदम्बा श्री शारिका भगवती की स्तुति करने लगे । देवी के "पाँचों स्तोत्रों" का मधुर कण्ठों से गगन-भेदी उच्चारण प्रारम्भ हुआ । श्रद्धापूर्ण पूजा विधान से सारा पर्यावरण विकसित हुआ । सर्वतः पूजा की धूम मच गई । निदान पुत्रों के ज़ार-ज़ार आर्तनाद से माता का प्रेमार्द्र-चित-विचलित हुआ, वह आर्तनाद न सह सकी, विवश हो, प्रकट मनस गोचर-अनिर्वचनीय तेजः-पुंज "भर्गशिखा" भगवती श्री शारिका के रूप में वहीं उत्तमपीठ पर प्रादुर्भूत हुई । चारों ओर जयजयकार की ध्वनि गूंज उठी, गगन मंडल से "पुष्पवृष्टि" हुई, जन-जन से सर्वत्र " प्रादुरासीत् जगन्माता वेदमाता सरस्वती " इस वचनावली की धूम मची ।

ज्योति जगन्माता प्रकट हुई । मुनि समाज ने जीवन आशा की सांस ली । स्वयं भगवती मुनि-कश्यप को आश्वासन देती हुई बोली, पुत्र कश्यप, निश्चय रखो, सारा कश्यप देश सकुशल है, सर्व प्रकार की बाधाओं से रहित है ।

सा देव वृन्दै-रनुगम्य-माना ।
हंसीव हंसैः कृत व्योमयाना ।
स्थितात्र पंचाल -नगस्य मूर्ध्नि
नौबन्धा नाम्न्यंत्र विहार-भूमौ ।।

(कश्मीर दर्पण)

नौबंधन-मथासाद्य स्थिता ते सुर सत्तमा: ।
विचार निरतास्तस्थु: किं कार्य मिति चिन्तया ।।

{ नीलमत पुराण - 213 }

चूँकि अभी सतीसर में नाही जलोदभव का सर्वनाश हुआ था और ना ही सरोवर से जल का निकास हुआ था । इधर से श्री भगवती के प्रादुर्भाव की घोषणा चारों ओर फैल गई । सारा देव-समाज श्री भगवती के दर्शनार्थ एकत्रित होने लगा । भगवती शारिका प्रथम जन्म में सतीरूप में पांचाल पर्वत के शिखरस्थ नौबंधन स्थान पर चिरकाल तक नौका विहार करती थी । अत: इस समय भगवती ने वहीं पूर्व-विहार-स्थल पर प्रस्थान करना उचित माना । भगवती के प्रस्थान करने पर एकत्रित सारे देव समाज ने भी अहमहमिकया उसके चरणों का अनुसारण किया मानो प्रतिष्ठित हंसी का अनुसरण हंस समाज ने किया हो -

भवानी-सहस्त्रनाम प्रमाण है :-

"हंसा हंसगति हंसी हंसोज्वल शिरोरूहा "

निदान सारा देव समाज यहीं { नौ बन्धन स्थान} पर एकत्रित हो, {भगवती के प्रदुर्भाव से फूला न समाता हुआ } परस्परकृत योजना पर विचार मग्न हुआ । श्री भगवती के पृधानत्व पर अब हमारा क्या कर्तव्य है। किस प्रकार हम जनसाधारण का भला कर सकें, तथा भगवती की कार्य साधना में कार्यरत प्रमाणित होंगे ।

एवं तेषुनिविष्टेषु शैले देवो जनार्दन : ।
अनन्त माह धर्मात्मा वधार्थं दानवस्यतु।।

....

कुरुष्व लांगलेन त्वं छिन्न भिन्नं हिमालयम् ।
येन सरोवरं सर्वं निस्तोयं त्वरितं भवेत् ।।

(नीलमत पुराण)

इतने में योजनाबद्ध, जगपालक भगवान-विष्णु, अनन्त फणधारी नागराज वासुकि से बोले, महाबली वासुकि जी, "श्री भगवती को जलोद्भव राक्षस का वध करना है", यह सबका अभीष्ठ है, यही हमारी योजना है, इस पर आपका कर्तव्य यह होगा, कि आप अपने बलशाली लांगूल (पूंछ) से हिमालय के पश्चिमीय शिला भाग को इस प्रकार पटकाओ कि वह शिलाभाग विदीर्ण (चूर-चूर) होवे, और सरोवर का सारा जल उन्हीं द्वारों से प्रवाहित होकर सारा भूभाग शुष्कावस्था में उभार आवे ।

जगत्पति भगवान विष्णु का शुभ आदेश स्वीकार कर नागराज वासुकि ने झडिति सरोवर के पश्चिमीय तट को ऐसा विध्वंस किया कि देखते-देखते सरोवर का सारा जल प्रवाहित हुआ, और जलहीन हो सारा सरोवर भूभाग में प्रकट हुआ । इतने में :-

वराहमूले च वराह-मूर्तिना
समुद्धृता भूः सह भूधरैः सुरा ।
निष्कासितं तेन यथा जलं सती-
सरोवराद् दैत्य विनाशनाय च ।।

(कश्मीर दर्पण)

अष्टादश भुजा भगवती शारिका द्वारा जलोद्भव राक्षस का संहार नियत था, अतः तदुपयुक्त वातावरण निमित स्वयं त्रिलोकपति भगवान विष्णु ने (वर्तमान वारामूला) के स्थान पर वराह का अवतार धारण कर चारों-ओर

और पर्वतमाला सहित जलमय भूभाग को अपने उन्नत दन्ताग्रों द्वारा उभार कर नागराज वासुकि के अनन्त फणों पर सदा के लिए स्थिर कर रखा । जलोद्भव अब जलाभाव के कारण नंगा होने लगा । अकिंचित्कर हो, राक्षसीय प्रजा सहित तड़पने लगा । इतने में सुअवसर पाकर महिषासुर-मर्दिनी-भर्गशाखा, समस्तदेव समाज की तेजोराशि अष्टादश भुजा भगवती श्री शारिका वहीं प्रगट हुई । चारों ओर भगवती का तेज: स्फार प्रस्फुटित हुआ, इसका विकास देखकर सारा देव-समाज प्रसन्नता से फूले न समाया । तभी कहा है :-

तत: समस्तदेवानां तेजोराशि समुद्भवाम् ।
देवीं दृष्ट्वा मुदं प्रापु-रमरा: महिषार्दिता: ॥

(मार्कण्डेय-पुराण देवी-माहात्म्य, द्वितीय अध्याय)

बस भगवती के प्रादुर्भाव पर सारे -देव एक-एक करके भगवती के शरण आये। सबने उनके काम में साथ देना अपना कर्तव्य समझा, पर " जगज्जननी के सान्निध्य में हमारी क्या सत्ता है, हम उनके सामने नगण्य हैं", इस भाव से सबने अपने-अपने अप्रतिविशिष्ट आयुध भगवती के चरणों पर समर्पण कर अपने को कृतकार्य माना । सर्वसम्मति से स्वीकृत होकर सर्वप्रथम भगवान शंकर ने अप्रतिहत त्रिशूल, भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र तथा पंचमुखी शंख, अग्निदेव ने अक्षीण शक्ति, वायुदेव ने सफल धनुष तथा अचूक तीरों-भरा तूणीर, देवराज इन्द्र ने उत्कट वज्र तथा ऐरावत हाथी, स्वयं यमराज ने कालदण्ड, वरुणदेव ने वरुणपाश, प्रजापति ने स्फुटिकाक्षमाला, स्वयं ब्रह्माजी ने कमण्डलु, भगवान सूर्य ने अक्षुण्ण किरणों का तेज: प्रताप, महाकाल ने खड्ग और ढाल, क्षीर सागर ने उज्ज्वल मणिमय हार

हार से नित्य नवीन दिव्य-वस्त्र युगल, दिव्य चूड़ामणि, दिव्य कुण्डल युगल-
दिव्य मणिबन्ध युगल, उज्वल अर्ध्य-शिरोभूषण, कलानिधि (चन्द्रमा) ने
दिव्य केयूर, दिव्य नूपुर, तथा अमल कमल, विश्वकर्मा ने परशु (फरसा),
अनेक अक्षुण अस्त्र-शस्त्र तथा अभेद्य-कवच, हिमालय ने वाहनार्थ मृगेन्द्र
(सिंह), कुबेर ने सदा मधुभरा-पानपात्र और स्वयं शेषनाग ने
मणिविभूषित नाग-हार सेवा में उपहार दिये ।

इस प्रकार सब देव दिव्य आयुधों और दिव्य अलंकारों से महामाया
अष्टादशभुजा को सर्वांग रूपेन विभूषित कर उनके चरणों में अष्टांग-
विधि विधान नत-मस्तक हो गये । देवी माहात्म्य तथा दुर्गा सप्तशती
स्वयं साक्षी है । यथा :-

1 2 3 4 5 6 7 8
अक्ष स्रग् परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
9 10 11 12 13 14 15
दण्डं शक्ति मसिं च चर्म जलजं घण्टा सुराभाजनम् ।
16 17 18
"शूलं पाश-सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवाल प्रभां
सेवे सैरिभ मर्दिनी मिह महालक्ष्मीं सरोजोद्भवाम ।।

देवताओं से इस प्रकार किए अनुनय विनय पर अष्टादशभुजा
भगवती सुदृढ़ अपनी अठारह भुजाओं में शस्त्रास्त्र
संपन्न अठारह आयुधों को धारण करते ही तड़ित्-ज्योति समान
जलोद्भव राक्षस पर टूट पड़ी । आँखें मूंदते ही जलोद्भव सपरिवार
क्षत-विक्षत हो ढेर हो गया । चारों ओर खुशी के नगाड़े बजने
लगे । गगन मण्डल से देवमहिषों से पुष्पवृष्टि हुई । सर्वत्र देवी के
जय-जयकार की गगन-भेदी गूंज मची ।

अन्त में :-

भावाब्धि मग्नस्य वराह-दंष्ट्रा
दुःखाग्नि तप्तस्य सुधांशु धारा ।
दारिद्र्य मग्नस्य च कल्पवल्ली
राज्य प्रदा साऽभवत्कश्यपाय ।।

(कश्मीर दर्पण)

इस प्रकार भगवती शारिका सांसारिक दुःख सागर में निमग्न भक्तों को "भगवान विष्णु के वराहावतार में अपने दन्ताग्रभाग पर जल-मग्न पृथ्वी के उद्धार के समान" उद्धार करती रही । ईति-भीति की ज्वाला से दग्ध (भक्तों) को चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान शीतलता प्रदान करती रही, तथा दरिद्रता के चंगुल में फंसे (भक्तों) को स्वर्गलोकवासी देवताओं की कामनाओं को सफल करने वाले कल्पवृक्ष के समान अभीष्ट सिद्धि देती रही, और अन्त में प्रसन्न मनसा महामुनि कश्यप को कश्मीर के राज्य पर अभिषिक्त कर गई । यही कारण है, कि कश्मीर का आधिपत्य कश्यप-मुनि के हाथ मे आया था, और प्रथम अवस्था में सतीदेश "कश्यप पुर" के नाम प्रचलित हुआ । धीरे-धीरे "कश्यप-पुर "कश्मीर" नाम में परिणत हुआ ।

निश्चित है - कश्मीरी भाषा में "घर" को "मोर" कहते हैं । जैसे "कोतर-मोर" कबूतरों का घर, और 'कोकर-मोर'-मुर्गियों का घर । यही कारण है कि कश्यप के घर को "कश्यप मोर" कहते थे । समय के परिवर्तन से बिगडते बिगडते यही "कश्मीर" बना, जिस नाम से अब तक

सर्वत्र प्रसिद्ध और प्रचलित है ।

स्मरण रहे, जगदस्रष्टा चतुरानन ब्रह्मा जी ने " अष्टादशभुजा महामाया श्री शारिका भगवती के प्रादुर्भाव लक्ष्य स्वयं श्रीमुख से जिस स्तुति का उच्चारण किया था, और जिसे महामुनि कश्यप को सुनाया था, भूलोक में देव समाज ने जिसे महामुनि कश्यप के संग पूर्ण-श्रद्धा तथा अपार भक्ति से सम्मिलित गान किया था, जिसके प्रभाव से जगजननी श्री शारिका भगवती का स्वयंभू: रूपेण जगत्कल्याणार्थ प्रादुर्भाव हुआ था, अभूतपूर्व वह स्तुति यथा है :।

अभूत पूर्वा देवि स्तुति :

जय भगवति, विन्ध्यवासिनि, श्मशान वासिनि, कैलास वासिनि, हुंकारिणि, कालायनि, कात्यायनि, हिमगिरि तनये, कुमार मात:, गोविन्द भगिनी, शितिकष्टकण्ठाभरणे, अष्टादश भुजे, भुजंग-वलय मंडिते, केयूर हाराभरणे, जय खड्ग-त्रिशूल-डमरू-मुद्गर-परशु-शशिकला-शर-चाप-वर -अभय-पाश-पुस्तक-कपाल- खट्वांग-गदा-मुसल-तोमर-वरहस्ते, कृपापरे प्रभूत विविधायुधे, चण्डिके, चामुण्डे, किरातवेषे, रूद्राणि, ब्रह्माणि, नारायणि, ब्रह्मचारिणि, वेदमात: , गायत्रि, सावित्रि, सरस्वति, सर्वाधारे, सर्वेश्वरि, विश्वेश्वरि, सर्वकर्त्रि, समाधिविश्रान्तिमये,

चिन्मये, चिन्तामणि स्वरूपे, कैवल्ये, कैवल्यस्वरूपे, शिवे, निराश्रये, निरूपाधिमये, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वर नमिते, मोहिनि, तोषिणि,--भयंकर नाशिनि, दितिसुत प्रमथिनि, काले, कालाग्निशिखे, कालरात्रे, अजे, नित्ये, सिंहस्थे, योगरते, योगीश्वर नमिते, भक्तजन वत्सले, सुरप्रिये, कारूण्ये, दुर्गे, दुर्जये, शरण्ये, कुरू मे जयम् । कुरू नः जयम् ।। कुरू नः जयम ।।।

....000....

स्मरण रहे, जगजननी भगवती श्री शारिका जिस अप्रतिहत तथा अनुपम-रूप लावण्यवती देवी सप्तक के साहचर्य में सदा बिहरती है, जिसके संग में अष्टादश भुजा ने दानवेन्द्र-जलोद्भव-महिषासुरादि राक्षसों का समूल संहार किया है । उसकी शुभ नामावलि यथा :-

देवी-सप्तक शुभ नामावली

अमा मावसु कामा च चार्चिकी टंक धारिणी ।
तारा च पार्वती चैव यक्षिणी शारिकाष्टमी ।।

1. श्री अमा, 2. श्री कामा, 3. श्री चार्चिकी
4. श्री टंकधारिणी 5. श्री तारा 6. श्री पार्वती
7. श्री यक्षिणी 8. स्वयं श्री शारिका भगवती ।।

यह भी विदित रहे - ये ही पूज्य अष्ट- देवियां हमारी शारदा लिपि तथा सम्पूर्ण देववाणी वर्णमाला की जननी है । इसी के आधार पर सारा देववाणी वाग्मय ओत प्रोत है ।।

1. अमा से - - (अ-आ-इ-ई-उ-ऊ आदि सारे स्वर
2. कामा से - (कवर्ग) क-ख-ग-घ-ङ.
3. चार्वी से - (चवर्ग) च-छ-ज-झ-ञ
4. टंकधारिणी से- (टवर्ग) ट-ठ-ड-ढ-ण
5. तारा से - (तवर्ग) त-थ-द-ध-न ।
6. पार्वती से - (पवर्ग) प-फ-ब-भ-म ।
7. यक्षिणी से - (अन्त: स्थ) य-र-ल-व ।
8. शारिका से - (ऊष्म) श-ष-स-ह । प्रादुर्भूत हुआ है

अत: सारा वाणी वागमय जीवित है ।

अन्त में इसी देवी-सप्तक परिवेष्टित श्री भागवती शारिका (अष्ट कुल-देवियां) प्रद्युम्न जी (भगवान श्री कृष्ण जी के सुपुत्र) द्वारा प्रतिष्ठित ,प्रद्युम्नपीठ (शारिका-पीठ-हारीपर्वस्थ)- प्रद्युम्न शिखर (चक्रेश्वर) पर "श्रीचक्र" रूपेण विराजित रही । भक्तजन इसी "श्रीचक्र" रूपा भागवती श्री शारिका का गुणगान करते हुए उनके श्री चरणों में नत-मस्तक हो अराधना करते है, तथा सम्पूर्ण प्रद्युम्नपीठ (हारी पर्वत) की परिक्रमा अब तक भी नित्यप्रति करते आये है ।

पर समय परिवर्तन और काल घटा से कश्मीरी जनता के विस्थापित दशा में इसमें विघ्न आ पड़ा है और बाधा पड़ी है । आशा है पुनरपि कश्मीरी जनता संस्थापित हो अष्टादशभुजा की ~~अपम्पार~~ अपरम्पार दया दृष्टि से यथाक्रम फिर श्रीचक्र की अराधना और परिक्रमा का

श्रीगणेश होगा ।

इसके उपलक्ष्य श्री शारिका माहात्म्य का यह श्लोक सर्वत्र उपलब्धा व प्रचलित है ।

प्रद्युम्न शिखरासीनां
मातृचक्रोप- शोभिताम् ।
पीठेश्वरीं शिलारूपां
शारिकां प्रणमाम्यहम् ।।

नोट : इसका सम्पूर्ण विवरण अग्रिम चौथे पटल में स्पष्ट रूपेण वर्णित है ।।

इति तृतीयः पटलः

कश्मीर दर्पण

(अथ चतुर्थ: पटल:)

चारों ओर घोषणा हुई " अष्टादश भुजा भगवती श्री शारिका द्वारा महामुनि-कश्यप कश्मीर के राज्य पर अभिषिक्त हुए । सम्पूर्ण कश्मीर मंडल पर महामुनि कश्यप का आधिपत्य हुआ । स्वयं श्री शारिका भगवती प्रद्युम्नपीठ (चक्रेश्वर) पर श्रीचक्र के विस्फार से विराजमान रही। बस इसके प्रसार और प्रचार की देरी थी कि :-

जले स्थले चात्र नगे वने तथा समाश्रितै: पुण्यजनै : सदा स्मृता ।
श्री सिद्धपीठे मुनिवर्य पूजिता सदाष्टदिग् बाहुधरा सु शारिका ।।
(कश्मीर-दर्पण)

कश्मीर देश में जहां भी कहीं जलाशय थे, शुष्क स्थल थे, अनावृत पर्वत स्थल वा सर्वत्र छायावृत घोरवन थे, वहां के निवासी पवित्रात्मा मुनिजन सिद्धपीठ (चक्रेश्वर) पर विराजमान अष्टादश-भुजा भगवती श्री शारिका के शुभ चरण-कमलों का स्मरण-चिन्तन-मनन तथा पूजन करने हेतु यहीं (सिद्धपीठ) पर आने लगे । यहां तक :-

देवी देवगणा: सर्वे स्वयं भू-प्रमुखा: सुरा : ।
स्वयं चात्र समागत्य तस्थौ पीठे मनोहरे ।।
केचिद् शिलाभावन देवा: केचिद् मृदक्ण वासिना: ।
केचिद् कक्षान्तरे लीना: सर्वे देवगणा स्तदा ।।
~~तश्चौ कांभि: समाक्रान्तं प्रकर्षौ भासते गिरि: ।~~

तच्छौक्तिभिः समाक्रान्तं प्रकर्षं द्योतते गिरिः ।
एवं पवित्री कृतं भागं सिद्धपीठेन विश्रुतम् ।।
तदा प्रभृति श्रीपीठं प्रद्युम्न शिखराभिधाम् ।
सर्व सिद्धिकरं लोके प्रख्यातं भुवन-त्रये ।।

(कश्मीर दर्पण)

निदान सारा सिद्धपीठ त्रिकोटी देवताओं का आवास स्थान बन गया । यहां तक स्थानाभाव से कई देवता शिलाओं के रूप में, तो कई मृदकणों के रूप में, और कई यहां के गुफागृहों में परिणत हों, तल्लीन हो गये । इस प्रकार देवशक्ति से ओत प्रोत सिद्धपीठ की प्रशस्ति सर्वत्र फैलती गई । सिद्ध हुआ, तीनों भुवनों में "प्रद्युम्न शिखर" सिद्धि साधक "सिद्धपीठ" है । सिद्धपीठ" इसका यथार्थ नाम है ।

सिद्धान्त है :

1. "पुराकृतं कर्म कर्तार मनुगच्छति "।

2. यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं त-मेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः ।।

(श्री गीताजी)

अर्थात् कोई भी व्यक्ति जिस किसी भाव के वशीभूत हो, शरीर त्याग देता है । पुनर्जन्म में उसी के अनुसार उसी की पूर्ति निमित वह शरीर धारण करता है । यहां तक कि पुराकृत कर्म भी साथ-साथ उसका अनुसरण करते हैं ।

श्री शारिका भगवती पूर्वजन्म में दक्ष प्रजापति की पुत्री थी ।

प्रिय-पति भगवान शंकर के ध्यान में पिता के द्वार अपनी ही ज्वाला से भस्मसात् हो गई थी । पुर्नजन्म में पर्वत-पुत्री हो अब पुनः उन्हीं शंकर भगवान के पाने के निमित्त इसी पवित्र-देवस्थली "कश्मीरवर्ति- "अमरनाथ" के गुहा-गृह में पूर्वजन्म की भांति शिवार्चना में तन्मय हुई ।

अत्रस्थिता शैल सुता सपर्यां -
चकार भर्तुः पुनः प्राप्ति हेतो : ।
पवित्र भूमिः मुनिदेवतानां
तीर्थीकृता सिद्ध महर्षि देवैः : ।।

(कश्मीर दर्पण)

कश्मीर भूमि यत्र-तत्र-सर्वत्र सिद्धों-महर्षियों यहां तक त्रिकोटि देवताओं की आवास भूमि रही है । सब ऋषियों और सिद्धों ने सिद्ध किया है, किसी भी प्रखर साधना के लिए यह पवित्र देवस्थान शुद्ध तीर्थस्थान है, सब में अग्रगण्य है । सफल धारणा की आधारशिला है । यही कारण है कि इस शुभ सिद्धपीठ पर सुशोभित भगवती श्री शारिका समयानुसार भिन्न-भिन्न शुभनामों से व्यवहृत होती रही ।

संक्षेप में :-

ब्रह्माण्ड गेहे विचचार नित्यं
या ब्रह्मचर्याभिनिवेश कामा ।
सा शारिकात्र दनुजस्य प्राणान्
जहार भूत्वा हर चण्ड-घांटा ।।

(कश्मीर दर्पण)

यहीं पर भगवती श्री शारिका ब्रह्मचर्यवती अपने ब्रह्माण्डरूप घर में

इसका संघार करती रहीं । ब्रह्मचारिणी बन तभी यह इन्हीं सदाशिव की (प्रखर घननाद करने वाली) "चण्डघंटा" रूप धारण कर महाबली दानवेन्द्र जलोद्भव की प्राणघातिनी प्रमाणित हुई । तथा चण्डी-महाचण्डी एवं कालरात्रि-तालरात्रि-महारात्रि के रूप में अनेकानेक शत्रुओं, उनके परम्परागत कुलों का संहार, तथा अति घोर एवं भयावह ईतिभीतियों का समूल नाश करती आई । इतना ही नहीं, समय समय पर प्रिय-भक्तों को परमसुख एवं परम आनन्द का संचार करती रही । "भूः भुवः स्वः" तीनों लोकों को कल्याण करती रही, तभी समय पर ब्राह्मण और भूदेव (ब्राह्मण-देवता) इन्हें "महालक्ष्मी" का प्रथम अवतार मानते आये हैं । कहना अतिशयोक्ति न हो, इन्हीं का सर्वतोमुखी सहारा भारत के जन समुदाय (73 करोड़ लोगों) को गतवर्षों में सम्पन्न शत्रु आक्रमण को असफल बनाने में सफल हुआ । भविष्य में भी इसी प्रकार की सफल एवं पूर्ण आशा है।

सर्वानन्दकरी महाभयहरी (त्रैलोक्य रक्षाकरी
चण्डी चण्ड-पराक्रमा रिपुकुले या कालरात्री सदा ।
यामाहुः कवयो, द्विजाति प्रवराः (पद्मावतारं भुवि
सा देवी मनुजैः स्त्रिसप्त शतकैः सं पूजिता कोटिभिः ।।
(कश्मीर दर्पण)

ध्यानाकर्षण की एक और धारणा है -

भगवती श्री शारिका जो लंकेश- (राजा रावण) की राजधानी लंका में "श्यामा" के शुभ नाम से विख्यात थी । कश्मीर को त्रिकोटि देवताओं की देवस्थली (तपः स्थली) मानकर यहां ही आने को

लालायित हुई थी, तो :-

अनन्त-नागै: संवृता हनुमता शिरोधृता ।
देवी भगवती राज्ञी भ्रान्ता सर्वत्र मंडले ।। 1 - 38

अन्ते संगम सन्निध्ये सिन्धु जल समावृतम् ।
सर्व प्रान्तं स जम्बालं फणीनां हित कारकम् ।। 1 - 41

वीक्ष्य फल प्रदानने स्वोप युक्त मिमं स्थलम् ।
विरम क्षणं मत्वं मलगदाँश्च चोदय ।। 1 - 42

स्वैरं स्वैरं विसर्पत तूल वदत्र पांकिले ।
वयं च विश्रमिष्याम: छाया द्रुमेषु भूतले ।। 1 - 44

(श्री श्री महाराज्ञी प्रदुर्भाव:)

निदान रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र के भक्त-प्रवर महाबली, वायुपुत्र श्री हनुमान के बलिष्ट स्कन्धों पर अपने प्रिय अलगर्दो (360 जलव्यालों, सर्पों) के सहित समारूढ हो, स्वच्छ निवास हेतु सम्पूर्ण कश्मीर मंडल का भ्रमण कर अन्त में सिन्धु (तन्नामक महानदी) के शीतल जल समावृत "शादीपोरा" तत्कालीन ब्राह्मण-ग्राम के निकटवर्ती, तूलवत् (रुई के गालों के समान) मृदु-जम्बाल से ओतप्रोत "तूलमूला" तन्नामके स्थान को अपने जलव्यालों के, उपयुक्त तथा सुख-साधक माना, और वहीं के छायावृक्षों से समाच्छन्न भू-भाग को अपने भी चिर-विश्राम के लिए उपयुक्त स्थान चुन लिया ।

इत्थं विश्रम्य श्यामा सा नानावर्णै रलङ्कृता ।
चिरायुक्त-सन्तोषा वास: सुखमभाजत " ।।

(श्री महाराज्ञी - 1-45)

इस प्रकार श्यामवर्णा-भगवती अपने को नाना रंगों से अलंकृत कर वहीं "तूलमूला" मंडलाकृति भूभाग में " भगवती महाराज्ञी" शुभ-नाम में सदा के लिए विराजमान रहीं ।

(सम्भवत: रचनाकार इस नाम से महाराज्ञा के उस नाग की ओर संकेत करता है, जिसका रंग देवी के मुद्रानुरूप बदलता रहता है । यह चमत्कार का मानव बुद्धि से स्पष्टत: परे है ।)

'नानावर्णै रलङ्कृता' इस उपयुक्त विशेषण से

सर्वथा सिद्ध है :-

पुरा श्यामा भवेत् या तु लकेशा भवने स्थिता ।
तेवेदानीं सती देशे महाराज्ञी ति विश्रुता ।।

(श्री महाराज्ञी प्रादुर्भाव:-1-52)

सर्वथा सिद्ध है, इन्हीं श्यामा देवी ने लंका पुरी में लंकेश की सुवर्ण लंका को सर्वथा उजाड दिया और वहाँ की सर्व सम्पति को समेटकर सतीदेश पर पदार्पण किया । "स्वयं "महाराज्ञी, शुभ नाम धारण कर महामुनि कश्यप को यहाँ का अधिपत्य समर्पण किया और सती देश को "कश्मीर" नाम से बसाया ।

यथा :-

या स्वर्णलंकामय हाय वायो: पुत्रस्य पृष्ठे सह सम्पदेव ।
कश्मीर भूमि सदनुग्रहाया जगाम राज्ञी स्वगणै: समेता ।।

(कश्मीर दर्पण)

समय पर मुनिजन इन्हीं को प्रकृति के लक्ष्य "परा-एवं-अपरा" श्रुतियों के रहस्य वेता "विद्या-एवं माया", साहित्यकी "सत्यम एवं

आनन्दम्", तो साधारण जनगण "गुरुमूर्ति, के नाम से व्यवहृत करते आये है। निदान यही भगवती-शारिका विशेष रूप-लावण्य से ओत-प्रोत हो भगवान शंकर की अर्द्ध पल्लविताकारा अर्धांगिनी बन जाती है। यथार्थ में इसी की शरण में आकर मानव सृष्टि परमकल्याण प्राप्त करती है :"-

कहा है :-

यामामनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं ।
विद्येति यां श्रुति - रहस्यविदो वदन्ति ।
तामर्द्ध पल्लवित शंकर रूप मुद्रां
देवी-मनन्य शरणाः शरणं प्रपद्ये ।।

{ पंचस्तवी }

इतना ही नहीं,

भगवती महामाया श्री शारिका का महिमामयी स्वभाव इतना प्रभावशाली है, यहां तक यम-नियमादि अष्टांग-योग निरत त्रिपुरासुर तथा कामदेव जैसे त्रिभुवन विजयी महारथियों को भी तिनके के समान अपनी क्रोधाग्नि द्वारा भस्मसात करने वाले भगवान शंकर को अपने वश में लाकर बड़े चाव से उनके वामार्द्धभाग की अधिकारी बनती है। कितना उनका अभूतपूर्व प्रताप है। इसी की पुष्टि में श्रीपुष्पदन्त विरचित "महिम्नस्तोत्र" का यह श्लोक अक्षरशः प्रमाण है :-

स्वलावण्याशंसा धृत धनुष-मह्नाय तृणवत
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुर-मथन पुष्पायुध-मपि ।
यदि स्त्रैयणं देवी यमनिरत देहार्ध घटना -
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ।। {महिम्नस्तोत्र श्लोक-24}

सर्वजनको विदित है -

अत्रामराणां प्रवहन् नद्येका प्राहुश्च सिद्धा अमरावती याम् ।
नाथोऽमराणां निवसन् गुहाया माह प्रियां स्वां स्व रहस्य वार्ताम्।।

(कश्मीर दर्पण)

देवस्थली कश्मीर में मानो सबको अमर-करने-वाली वनस्थली महानदी जिसे सिद्धगण तथा देवगण सब " अमरावती" शुभ नाम से पुकारते आये हैं, आदिकाल से बहती आई है । किंवदन्ती है, अमरावती अपने स्वच्छ और पावन जल में स्नान करने वाले यात्रियों को अमर बना देती है । देवताओं के स्वामी, स्वामी श्री अमरनाथजी इसी पतित पावन महानदी के तटस्थ गुहा-गृह में चिरकाल से निवास करते रहे, और समय -समय पर प्रियतमा उमा (शारिका) देवी को अपनी अमर कथाओं की रहस्य वार्तायें सुनाते रहे । तब से इसकी महत्ता आज तक यथावत चलती आई । आज भी इसी "गुहा गृह" में वर्तमान ज्योतिर्लिंग का दर्शन करने हेतु देश देशान्तरों से जनता यहां आ जाती है । चन्द्रमा की कला विकास के समान शुक्लपक्ष में उत्तरोत्तर वर्धिनी पूर्णिमा तिथि पर 16 कला सम्पूर्ण, तथा कृष्णपक्ष में उत्तरोत्तर क्षीण-कला-वर्तिनी अमावस्या पर शून्याकर हिमलिंग का दर्शन पाकर कृतकृत्य हो जाती है ।

योऽज्ञानगम्यः श्रुतिभिः विमृग्यः कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।
अजः शिवः पुण्यजनैः नमस्यः सोऽत्रस्थितः पर्वत कन्दराया म् ।।

(कश्मीर दर्पण)

वस्तुतः यही वह "गुहा गृह" है जिसमें प्रतिष्ठित स्वयंभू

"ज्योतिर्लिंग" जो कूटस्थ है, निर्गुण और निराकार है, ज्ञानी जन ज्ञान द्वारा जिसका साक्षात्कार पाते हैं। वेद भगवान श्रुतियों और मंत्रों द्वारा, इसी का आभास देते आये हैं। पुण्यात्मा सज्जन सायं-प्रातः इसी की अराधना तथा साष्टांग प्रणामादि से मनः सन्तोष पाते हैं।

यही वह "गुहा-गृह है जहां "शैलपुत्री" भगवती शारिका ब्रह्मचारिणी हो पूर्वपति भगवान शंकर की पुनः प्राप्ति निमित पूर्वावस्था की भांति तपस्या में रत रही थी।

यह वही समय है जब सब देव भयंकर तारकासुर के उपद्रव से तंग आकर, स्वयं ब्रह्माजी के कथनानुसार महादेव के अंश की प्रतीक्षा में थे। समय का सदुपयोग किया। दोनों भगवान शंकर और शारिका स्वार्थ सिद्धि निमित आमने-सामने तपस्या में लीन थे तो देवताओं की प्रेरणा से रतिपति कामदेव स्वयं वहीं उपस्थित हुए। आते ही देवेच्छया तथा अपनी अनुपम प्रतिभा शक्ति से त्रिनेत्रधारी शंकर की तपस्या भंग करना चाहते थे, और "संमोहनास्त्र", अपने सफल आयुध का प्रयोग ज्यूं ही करने लगे, तो क्या हुआ, क्रोधाग्नि वश भगवान वामदेव (शंकर) ने अपनी ललाटोत्पन्न ज्वाला से कामदेव को भस्मावशेष बना दिया।

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति।
तावत् स वह्निः भवनेत्र-जन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥

(कुमार-सम्भव-कालिदास)

आश्चर्य है, आकाश पर देवता अभी भगवान शंकर के

मनोभाव का चिन्तन ही करते थे, गला फाड़ फाड़कर " हे प्रभो ।

भोलेभाले इस कामदेव पर "क्रोध न करिये -क्रोध न करिये" का

निनाद करते ही थे । इतने में "त्रिपुरारी के नेत्रोद्भव ज्वाला से कामदेव

तत्क्षण भस्म की ढेरी बन गये । प्रियपति की अभूतपूर्व यह दशा देखकर

रति (कामदेव की पत्नी) विरह की पराकाष्ठा में विलाप करती हुई अचेत

पड़ी । भगवान स्वयं आशुतोष है, दीन-दयालु है, रति को कृष्णावतार

में अपने पति से पुनर्मिलन का वर देते हैं ।

...

इति चतुर्थ: पटल:

कश्मीर-दर्पण

॥ अथ पंचम: पटल: ॥

इसमें:—

इसमें (मनोभाव कामदेव का भगवान श्री कृष्णजी के घर "प्रद्युम्न के नाम से, उनकी प्रियपत्नी "रति" का दैत्यराज-मायावी शम्बर के घर "मायावती" के नाम से नामकरण करना, अन्त में अष्टादश भुजा श्री शारिका का प्रद्युम्नपीठ – चक्रेश्वर पर परिपूर्ण विस्फार का विस्तृत विवरण) वर्णित है ।

सर्वत्र विदित है कि कामदेव भगवान विष्णु के अंशोद्भव है, उनके उत्कट और उत्कृष्ट शौर्य का अप्रतिहत प्रभाव था । पर भगवान शिव के सामीप्य उनकी कुछ न चली । उनके नेत्रोद्भव तेज: पुंज से वह भस्मसात हो गये । उनकी प्रिय पत्नी "रति" पति की अभूतपूर्व यह दशा देखकर अवाक् हो अचेत पड़ी । त्रिपुरारी जहां उग्रस्वभाव के हैं, वहीं "आशुतोष" भी हैं (दीन-दयालु भी हैं), उन्होंने रति की इस उन्मत अवस्था से विह्वल हो, उसे पुनर्जन्म में "कृष्णावतार" में अपने प्रियपति प्रद्युम्नजी से पुनर्मिलन का वर दिया, निदान प्रियपति के शोचनीय विरह में "रती" सती हो गई ।

वर (शुभ आशीर्वाद) सफल होने में चिरकाल नहीं लगता है । तदनुसार कृष्णावतार में कामदेव महारानी रुक्मिणी के गर्भ में जन्म धारण करते हैं, और इधर कालान्तर में कामदेव की पत्नी-रती भी महामानी दैत्य-राज शम्बर के घर जन्म धारण करती है ।

बात समयाधीन है, महारानी रुक्मिणी के घर पुत्रोत्पति अभी-2

हो ही रही थी कि "देवर्षि-नारद" महामानी शाम्बर के घर पहुंच जाते हैं, आते ही दैत्यराज को इस प्रकार की भाविष्यवाणी से सूचना देते हैं। रे", शाम्बर। ध्यान से सुनो, अभी अभी तेरा संहार-कारी काल यदुवंश में महाराणी रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न हो गया है। बस, देवर्षि नारद के मुख से भाविष्यवाणी का सुनना ही था, मायावी शाम्बर ने छद्मवेश में इसी रात नवजात शिशु का अपहरण कराया और उसे अथाह समुद्र की लहरों के समर्पण किया, इस आशा पर, अगाध समुद्र में नवजात शिशु महामत्स्यों का एक ही ग्रास बनेगा, फिर इसका अंशमात्र भी मिलना असम्भव होगा। चाहे यदुवंशी [यादव] कितने भी बली क्यों न हों, पर दैव की लीला अपरम्पार है, अघटन घटना घटीय सी है। समुद्र में एक वृहद्-मत्स्य नवजात को एक ही ग्रास में निगलता है। दैवेच्छा बलीय सी है। इसी अवसर पर एक मत्स्य-जीवी अपने विशाल जाल में अन्य मत्स्यों सहित इस वृहत्-मत्स्य को पकड़ता है और खुशी से, इस आशा पर, दैत्यराजा से विशेष पारितोषिक प्राप्त होगा" यह बहुभक्षी है, इसी मायावी शाम्बर की भेंट करता है। शाम्बर का रसोइया प्रसन्नता से महामत्स्य को स्वयं चीरता है। दैवयोग से वह जीवित अवस्था में ही एक नवजात शिशु को मत्स्योदर से पाता है। रसोइया सुन्दर नवजात को देखकर स्वयं पुत्राभाव में फूले न समाता हुआ दूसरों की नजरों से छिपकर अपने निवास पर इसे लेता है और पुत्रवत् पालता है। अन्त तक इस सारी घटना को रहस्य के गर्भ में निहित रखता है। -

कालगति प्रबल होती है, इसी अवसर पर शाम्बर के घर एक अति सुन्दरी मोहमयी-पुत्री का जन्म होता है। समय पर इसका "मायावती," नाम से 'नामकरण' संस्कार होता है। समय बीतता जाता है, मायावती और मत्स्यजात दोनों दैत्यराज-शाम्बर के घर एक साथ यथावत् समान-रूप से पलते जाते हैं। दोनों एक साथ युवावस्था पाते हैं। भगवान शंकर के वर (शुभ आशी) से दोनों एक दूसरे से परिचित होते हैं। दोनों को पूर्वजन्म का सारा इतिवृत्त विदित होता है। निदान दोनों अपनी कूटनीति से मायावी शाम्बर का सर्वनाश करते हैं, और रसोइया की सर्वथा मानवृद्धि और अन्त में सद्गति दिलाते हैं ।।

भगवान वेद-व्यास का इस पर यथा कथन प्रमाण है :-

1· कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तये भूय स्तमेव प्रत्यपद्यत ।।

2· स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्ण-वीर्य समुद्भवः ।
"प्रद्युम्न, इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ।।

3· तं शाम्बरः कामरूपी हृत्वा तोक मनिर्दशम् ।
स विदित्वात्मनः शत्रुं प्रास्यादन्वत्यगा गृहम् ।।

{श्रीमद्भाग - 10-55, 1-2-3}

अन्त में दोनों द्वारिकाधीश भगवान श्रीकृष्णजी के पास द्वारिका पुरी में जाते हैं, अपना सारा इतिवृत्त उन्हें सुनाते हैं। यादव चिर-वंचित नवजात शिशु को युवक के रूप में पाते हैं, फूले नहीं समाते हैं, चारों ओर

खुशियाँ मनाई जाती है। देवर्षि नारद की भविष्यवाणी पर विश्वास-रख महारानी रुक्मिणी खोये हुए पुत्र को पुनः प्राप्त कर आनन्द विभोर हो जाती है।

(स्मरण रहे ---

देवर्षि नारद ने जैसे महारानी रुक्मिणी के पुत्रोत्पत्ति पर दैत्यराज शम्बर को उसके संहारकारी काल के जन्म की सूचना दी थी। भविष्यवाणी की थी, इसी प्रकार रुक्मिणी को भी खोये हुए (अपहृत) पुत्र के पुनः प्राप्ति की सूचना दी थी, उसी की ओर यहाँ यह संकेत है।)

इसी प्रसन्नता में द्वारिका पुरी में स्वयं श्री कृष्ण-चन्द्र चिर-प्राप्त प्रिय पुत्र को "प्रद्युम्न" के प्रिय नाम से "नामकरण, और मनमोहिनी मायावती रति से "पाणिग्रहण, संस्कार रचाते हैं"। दोनों शुभ संस्कार एक साथ महान् समारोह से सम्पन्न करते हैं। निदान "रति और कामदेव" की प्रिय दम्पति अपने विशाल यादव वंश में अन्त समय तक पारस्परिक दाम्पत्य जीवन बिताते रहे।।

प्रद्युम्न जी, रूप लावण्य में साक्षात् कामदेव और मनमोहन के अवतार थे, इतने रूपवान थे कि उनकी माताओं को भी कभी कभी प्रियपति श्यामसुन्दर का आभास उन पर होता था, "क्यों न हो, मनमोहन श्री कृष्णचन्द्र के वीर्य और लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र साक्षात् अपने पिता के प्रतिबिम्ब थे।

" आत्मा वै पुत्र नामासि" श्रुति माता प्रमाण है। स्वयं वेदमूर्ति भगवान वेद व्यास इसका अनुमोदन करते हैं - कहते हैं :-

यं वै मुहः पितृ-स्वरूप निजेश भावा -

स्तन्मातरो यदभजन् रह गूढ भावा : ।

चित्रं न तद् खलु रमास्पद विम्ब बिम्बे

कामे स्मरे, क्षि विषये किमुतान्य नार्याः : ।।

﴾ श्रीमदभा॰ - 10-2-40 ﴿

नीलमत पुराण प्रमाण है - महाभारतकाल में श्रीकृष्णचन्द्र के शत्रु जरासन्ध के प्रिय सम्बन्धी "गोनन्द, का कश्मीर पर आधिपत्य था। इन्हीं गोनन्द की सहायता का बल पाकर "आज-तक 17 बार पराजित होकर भी" जरासंध अब पुनः यादव-वंशायों को युद्धभूमि में ललकारता है, फलतः युद्ध फिर छिड़ जाता है।

﴾ नोट :- युद्ध विषयक सम्पूर्ण आख्यान का स्पष्ट विवरण इसी पुस्तक के "प्रथमो भागः में "श्रीकृष्ण और जरासंध" तथा "कश्मीर के राजा गोनन्द" दोनों शीर्षकों में यथावद् वर्णित है। कहीं पुनरुक्ति न हो, अतः यहां पर कथा को संकेत मात्र में सूचित किया गया है। ﴿

" कालः सर्वजनान् प्रसारित करो गृह्णाति दूरादपि" इस लोकोक्ति की सार्थकता में कालयवन-गोनन्द, तथा उसका प्रियपुत्र "दामोदर, सब यादव-राजा बलरामजी तथा स्वयं श्री कृष्णचन्द्र जी के हाथों वीरगति पाते हैं। विशेष बात यह थी, इस समय दामोदर की स्त्री गर्भवती थी।

पिता पुत्र दोनों की वीरगति पाने पर कहीं इनके वंश और राज्य का विच्छेद न होवे, अत: उनके भावी पुत्र को गर्भावस्था में ही राज्य प्राप्ति निमित श्री कृष्णजी स्वयं दामोदर की स्त्री को राज्याभिषेक देने कश्मीर पधारते है, राज्यतिलक की प्रथा निभाते है ।

कश्मीर में इस समय भक्ति का स्वर्णयुग था, ऋषि मुनियों का चारों ओर भक्ति विषयक-जप विधान तथा तपो-विषयक "तां तां" था। कश्मीर भर में भक्ति पराकाष्टा पर थी ।

इसी शुभ अवसर पर भगवान श्रीकृष्ण "साम्बजी तथा प्रद्युम्नजी" दोनों प्रियपुत्रों तथा पुत्रवधु मायावती रती को अपने साथ कश्मीर ले आते हैं । उन्हें यहां की सारी विशिष्ट क्रीड़ास्थालियों-वनस्थालियों तथा देवस्थालियों का विहार कराते है । सब स्थलियों के विहारोपरान्त जब वे क्षेत्र राज सूर्यक्षेत्र "मार्तण्ड-स्थल" में प्रवेश करते हैं, तो सर्वप्रथम यहां के तेज:-पुंज "भार्गशिखा से उन्हें साक्षात्कार होता है । शुद्ध वैखरी प्राप्तकर इन्हीं तेज:-पुंज के लक्ष्य "साम्ब पंचाशिका-स्तोत्रावली" की निरर्गल रचना करते हैं, निदान अन्त तक उसी की उपासना करते रहे ।

आश्चर्य है, श्री साम्बजी जो स्वयं तेजोमूर्ति के अवतार थे, इस शुद्ध-तेज: पुंज के वशीभूत हो उन्ही में समावेश पाते हैं।

वस्तुत: यह उसी काई बनी भस्मी का तेज: पुंज है, जिसे महादेवी मीनाक्षी ने "सारिका-सारिका" नाम से पुकारा था । यही प्रकाशमान भगवती शारिका का अवाङ्-मनसगोचर तेज:-पुंज है । जो अभी तक "भर्गशिखा" नाम से प्रचलित और प्रसिद्ध है ।। तेजोमूर्ति "साम्बजी, रचित "साम्ब-पंचाशिका" पुस्तक पाण्डुलिपि के रूप में अभी कश्मीर के "श्री प्रताप" पुस्तकालय में सर्वथा सुरक्षित है। वैसे इसकी हस्तलिखित प्रतियां काश्मीरी

ब्राह्मणों के पूजागृहों में भी, सर्वथा उपलब्ध है।

इधर प्रद्युम्नजी श्री साम्बजी की देखरेख में शात्युपासकों में अग्रगण्य बने। प्रद्युम्नजी ने कश्मीर वर्ति प्रवरसेनपुर (श्रीनगर) में शारिकापीठ (हारी पर्वत) पर स्वनाम चालित "प्रद्युम्न-शिखर" (चक्रेश्वर) की प्रतिष्ठा स्थिर की, तो इनकी ही उत्कट भावना और उत्कृष्ट भक्तिभाव से ओतप्रोत (विभोर) हो अष्टादशभुजा भगवती श्री शारिका यंत्ररूपेण "श्रीचक्र" के स्वरूप में इसी प्रद्युम्नपीठ के शिखर पर विराजमान रही। बस इनके ही प्रचार व स्फार में ——— यत्र-तत्र सर्वत्र प्रतिष्ठित देवगण ने भगवती श्री शारिका के चरण कमलों के चिन्तन-स्मरण तथा पूजन हेतु यहीं आना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे सम्पूर्ण शारिका-पीठ त्रिकोटी देवताओं का आवास (प्रतिष्ठा- स्थान) बन गया। यहां तक कि दैवीशक्ति से ओतप्रोत यह शारिकापीठ तीनों भुवनों में सिद्धि साधक के नाते "सिद्ध पीठ"नाम से सर्वत्र प्रख्यात हो गया"।।

इसी के लक्ष्य यह उक्ति है :-

1. तदा प्रभृति श्री पीठं प्रद्युम्न शिखराभिधाम्।
   सर्व सिद्धिकरं लोके प्रख्यातं भुवन-त्रये ।।

2. देवीपीठ मिदं प्रोक्तं श्री विद्यायन्त्र मुत्तमम्।
   दारिद्र्य दुःख शमनं कलौ सर्वत्र सिद्धिदम ।।

(कश्मीर दर्पण)

स्मरण रहे :-

श्री चक्र श्रीयन्त्र की प्रतिकृति है। यंत्र-मंत्र तथा तंत्र विशारदों के

वचनानुसार "श्रीचक्र" वास्तव में "श्रीयंत्र" है। यंत्र और चक्र दोनों एक है, एक दूसरे से अभिन्न है। "श्रीचक्र" कहो या श्रीयंत्र, अष्टांग पूजा के विधि विधान में दोनों का महत्व एक समान अपरिमित तथा अनिर्वचनीय आनन्द सन्दोह है। कितना भी इसकी गरिमा तथा महिमा के बारे में कहा जाये, कम है :-

कहा है, संक्षेपतो यथा :-

1. यद यद वै विभवं लोके यव यद दिव्यं महत्सुखम ।
तद तद प्राप्नोत्यसं दिग्धं श्री चक्रस्य हि पूजनात ।।

* प्राप्नोत्यसं-

2. सार्ध त्रिकोटि तीर्थेषु स्नाने यत फलं स्मृतम ।
तद फलं लभते मर्त्यो जप्त्वा श्री चक्र-मुत्तमम ।।

3. चकृति घोर पापानि पूजनाद वन्दना तथा ।
दर्शनाद स्पर्शनात्स्नाना च्चक्र मेत दुदाहृतम ।।

4. यजनात त्रायते यस्माद याजकं वीर वन्दिते ।
अतो चक्रस्य यंत्रत्वं कथितं वेद पारगै : ।।

5. यमैश्च नियमैश्चैव यजनात त्रायते स्वकम ।
तस्माद यंत्र मिति प्रोक्तं मंत्र-तंत्र विशारदैः ।।

(साथ ही यह धारणा भी इसके लक्ष्य प्रचलित है)

1. यजनाद त्रायते - इति यंत्रम ।

2. मननाद त्रायते - इति मंत्रम ।

3. दुख निर्यंत्रणाद-यंत्र मित्याहुस्तंत्र वेदिनः । अर्थात

(जिससे सर्व प्रकार के दुखों का स्तम्भन हो, तंत्र वेत्ता उसी को "यंत्र" कहते है ।)

4. यंत्रं मंत्रमयं प्रोक्तं मन्त्रात्मा दैवतैव हि ।
देहात्मनो यथाभेदो यंत्र दैवतयोस्तथा ।।

5. यंत्र-मित्याहु-रेतस्मिन् देवः प्रीणाति पूजितः ।
विना यंत्रेण पूजायां देवता न प्रसीदति ।।।

{ श्री श्री महाराज्ञी प्राद्रुर्भाव :-पृ0-33 }

इस प्रकार "श्रीचक्रणेण, प्रतिष्ठित महामाया भगवती शारिका की महिमा का कहां-तक वर्णन किया जाय । वास्तव में माता ही सकल जगत में ओत प्रोत है । इन्हीं के साहचर्य का प्रभाव है कि - सर्वथा सिद्ध है, सर्वथा सिद्ध है :- भगवान त्रिपुरारी {शंकर} भी इन्हीं महामाया के साहचर्य से "महादेव" इस महामान्य पदवी से अलंकृत हुए, नहीं तो, कहां जिसका ओढ़ना गजचर्म है, शरीर का विलेपन-अंगराग जले मुर्दों का चिताभस्म है, भिक्षा मांग-मांग कर खाकर, श्मशान भूमियों पर ठहरना जिसका नित्य कार्य है, भूत-प्रेत, पिशाच आदि जिसके सहचारी है, ऐसे नंगे धाड़ंगे भिखारी को देवादिदेव महादेव पदवी पाना सब महामाया के साहचर्य का प्रभाव है । यथा -

चर्माम्बरं च शवभस्म विलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेत-भूमौ
वैताल संहति परिग्रहता च शम्भुः
शोभां बिबर्ति गिरिजे तव साहचर्यात्

{ पंच्चस्तवी - 4 स्तव }

इतना ही पर्याप्त नहीं, और भी पढ़िये :-

पंचस्तवी साक्षी है, अपनी क्रोध भारी दृष्टि से भगवान शंकर

ने जब कामदेव को भस्मीभूत किया था, संसार में राग-रंजित सारा प्रेमालाप लुप्तप्राय हो गया था । जगजननी श्यामसुन्दरी श्री शारिका प्रेम विलोप नहीं सहस की । तो क्या हुआ, भगवती ने भोलेभाले अपने प्रेम-भरे कटाक्ष मात्र से कामदेव को यथावत पुनः: जीवित किया था, विस्मय की बात नहीं, भगवान शंकर ने उसी दिन से अपने तृतीय ललाट नेत्र को लज्जा के वश सदा के लिए अर्धनिमीलित कर रखा है- यथा-----

दग्धं यदा मदन मेक मनेकधा ते
मुग्धाः कटाक्षविधि रंकुरयां चकार।
धत्ते तदा-प्रभृति देवि ललाट नेत्रं
सत्यं ह्रियैव मुकुली कृत-मिन्दुमौलिः ।।

§ पंचस्तवी - 5 स्तव §

स्मरण रहे :-

यह फाल्गुण मास कृष्णपक्ष की अष्टमी का शुभ दिन था, जब भगवती शारिका ने अमरावती नदी के तटवर्ती गुहा में समाधि निष्ट भगवान श्री शिव के सान्निध्य से प्रस्थान किया और कश्मीर के मध्यवर्ती प्रवरेश-पुर के प्रद्युम्नपीठ पर अपना शुभासन सदा के लिए स्थिर किया था, आज का ही शुभ दिन है, जब प्रद्युम्नपीठ पर भगवती श्याम-सुन्दरी श्री शारिका का प्रादुर्भाव हुआ, और यह अष्टमी "शारिका अष्टमी के शुभ नाम से चिरकाल तक विख्यात थी, परं समय-परिवर्तन तथा भाषा परिवर्तन से"शारिका -अष्टमी" नाम से हारा-अष्टमी" परिवर्तित

हुई, और इसी शुभनाम से अब तक प्रचलित रही, विस्थापित दिन तक कश्मीरी जनता इस रात्रि को प्रद्युम्नपीठ पर रात भर जागरण करती रही, सुना जाता है, कुछ इके-दुके कश्मीरी समयानुसार तथा पूर्व प्रथानुसार अभी भी जागरण रीति प्रद्युम्नपीठ (चक्रेश्वर) पर वर्ताते हैं ।

यहाँ तक साधारण कश्मीरी-जनता "होराष्टमी, को भगवती शारिका का जन्मदिन के रूप में बड़े समारोह से मनाते थे । जन्म दिन की भाँन्ति रीति-अनुसार पीले चावलों के परस्पर बाँटने से प्रसन्नता प्रकटाते थे ।

पर विस्थापित .... "

यथार्थतः शारिका "जल में तैरती काई, तथा पक्षि-विशेष" का नाम है, चूँकि माता हैमवति (हिमालय की प्रिय पत्नी) ने प्रिय-पुत्री पार्वती को इसी शुभ नाम से नामकरण किया था, अतः इस दिन को भी "शारिका अष्टमी" का नाम भू मंडल में प्रख्यात हुआ । यह भी एक मूल कारण है ।

होरा अष्टमी से केवल पाँचवे दिन (फाल्गुण कृष्ण त्रयोदशी को) "महाशिवरात्रि" का शुभ पर्व दिन होता है । इस शुभ-दिन पर कृत-प्रतिज्ञानुसार "शिव-शक्ति" का "पति-पत्नी" के रूप में पाणि-ग्रहण (परस्पर रमण) निश्चित था । यही कारण है, परमात्मा शिव और जगज्जननी शक्ति के इस "द्विरागमन-रात्रि को" महा-शिवरात्रि कहते हैं ।

भक्त-जन इस शुभ पर्व को भिन्न-भिन्न विधि विधान से मनाते आये हैं । विशेष कर कश्मीरी जनता, जो अनेक रीति-रिवाजों से इस शुभ दिन को मनाती रही, पर .... ।।

कश्मीर की सांस्कृतिक परम्परा का अध्ययन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है । श्री "तन्त्रालोक" जैसे शैव- ग्रन्थों में कश्मीर के जिन पुराने प्रचलित आचारों का उल्लेख मिलता है, वे हैं :- वेदाचार, शैवाचार, वामाचार, दक्षिणाचार, कुलाचार, मताचार, और त्रिकाचार। इन से अतिरिक्त एक और महाचार, इसका विश्लेषण श्री शितिकंठ के "महानय प्रकाश" में मिलता है । इन आचारों में से दक्षिणाचार वामाचार और महाचार, ये तीन मुख्यतया हर-रात्रि (महा-शिव-रात्रि) के साथ सम्बन्धित आज भी है । हमारे वरिष्ठ पूर्वज अति प्राचीनकाल से इस पर्व-दिन को विशेष महत्व देते आये हैं । उनके मन में इस पर्व के प्रति जो आदर-भाव और अटल-विश्वास रहा है, उसका उल्लेख यहां के प्रसिद्ध लेखक "श्री जयद्रथ-महाकवि ने अपनी रचना "हर चरित-चिन्तामणि" में विस्तार पूर्वक किया है । भक्त-जन इस शुभ पर्व को भिन्न-भिन्न विधि विधान से सम्पन्न करते आये हैं । सबकी इसमें अपनी अपनी प्रथा है ।

प्रद्युम्न और मायावती (कामदेव और रति) ने इसी "होरा-अष्टमी (शारिका-अष्टमी) से "शिव-शक्ति -मिलन" संकल्प का व्रत धारण कर त्रयोदशी को इसका पारण (समापन) किया। इसकी प्रसन्नता में "चूँकि भगवान शंकर के शाप से इनका (कामदेव और रति)

का पारस्परिक प्रेम-मिलन लुप्त-प्राय हुआ था, पर आज "महाशिव-रात्रि-शुभ पर्व पर " प्रथम बार कामदेव प्रियपत्नि से बोले " हे रति ! "एहि आवामपि विवाहाव है " अर्थात हे रति । आओ हम भी आज परस्पर "प्रेम मिलन" उत्सव मनायेंगे । बार बार कामदेव के "हे रति-हेरति । शब्दानुकरण के अनुरणन से जनता इस शिवरात्रि-महोत्सव को "हेरथ-हेरथ, नाम से पुकारती रही । निदान कश्मीर में "शिवरात्रि-महोत्सव" कहो या "हेरथ", दोनों ही एक समान रूढि बनगये, अधिकतया प्रचलित रहा ।- आजतक "हेरथ, शब्द है

यही कारण है, कश्मीरी सारी जनता इस शुभ-पर्व-दिन पर अपनी बहू बेटियों को मांगलिक वस्तुएं दे देकर अपने-अपने पतिगृह जाने को बिदा देती है । यह प्रथा अभी तक प्रचलित है ।

अति प्राचीनकाल से कश्मीर में यह प्रथा प्रचलित थी, वैसे तो सारी जनता, विशेषकर शक्त्युपासक भक्तजन अति प्रातः ब्राह्मी मुहूर्त सिद्धपीठ (हारी पर्वत) की नित्यप्रति प्रदक्षिणा करते थे, वहां प्रद्युम्नपीठ (चक्रेश्वर) पर विराजमान देवी-यंत्रमय श्री चक्र, के सान्निग्ध में सर्वप्रथम आसन-शोधनादि का उपक्रम कर, ततः "श्रीयंत्र" तथा तेजोमयी अपनी आत्मा दोनों का एकाकार ज्वाला में समावेश पाकर अष्टांग विधि से अर्चना (पूजा) का श्रीगणेश करते थे । यहां तक यंत्रमय श्री तेजोमय चक्र का नीर-क्षीर तथा अति सुगन्धित द्रव्यों से अष्ट प्रकारक-स्नान, अति विशिष्ट प्रसादनों से-अनुलेपन, धूप दीप तथा चामर आदि से -नीराजन, और

चन्दन-सिन्धूर एवं कुंकुम आदि से यथारुचि-प्रसादन, कर अन्त में विविध फलों-मिष्ठान्नों तथा अतिविशिष्ट-ताम्बूलों से सर्वभावेन अर्चना करते थे।

श्री शारिका माहात्म्य में परिचर्या का विवरण इस प्रकार वर्णित है :-

1. क्षीरेण स्नापयेद देवीं पूर्णभाक्ति समन्वित: ।
कुंकुमागुरु कर्पूरै: चन्दनै - र्मृगनाभिभि: ॥

2. सिन्धूर-कुष्ट-ताम्बूलै: तत: तैलै: सुगन्धिभि: ।
लेपयेत् यस्तु देवीशीं स याति परमां पदम् ॥

3. मत्स्यै: मांसै-रपूपैश्च वटुकै र्बर्बरै तथा ।
शतछिद्रै: सिताम्बोजै: कुसुमै: विविधै: रसै: ॥

4. मुक्तामणिभि रक्षोटै: यस्तु पूजयते शिवाम ।
सर्व सिद्धी-रवाप्नोति शिवया सह मोदते ॥

इस प्रकार भक्त जन विधि-विधान अष्टांग पूजा द्वारा महादेवी श्रीशारिका के शुभ चरण-कमलों में --आत्म समर्पण कर नत-मस्तक हो सप्ताक्षरी -देवस्तुति का गगन-चुम्बी-गान सम्मिलित करते हैं :-

ॐ ह्रां फ्रां श्रां शारिका-देवी भाव दुर्गतिनाशिनीम् ।
प्रद्युम्न-पीठ-निलयां भक्ताभय-वर-प्रदाम ॥
सिंहासनां महारौद्रीं कोटि सूर्य-सम प्रभां ।
शरणं त्वां महालक्ष्मी व्रजामो वीर वन्दिताम ॥

1. ओ ओंकार रूपिण्यै शारिकायै नमोनम: ।

2. महाबीज स्वरूपायै भवान्यै ते नमोनम: ।

3. लक्ष्मी बीज स्वरूपायै शार्वाण्यै ते नमोनम: ।

4. कूर्च बीज स्वरूपायै रुद्राण्यै ते नमोनम: ।

5. सिन्धुर-बीज रूपायै मृडाण्यै ते नमोनम: ।

6. शून्य बीज स्वरूपायै सप्ताक्षर्यै नमोनम: ।

7. नित्यानन्द स्वरूपायै चण्डिकायै नमोनम: ।

फिर अवसान पर -----

1. बीजै: सप्तभि-रुज्वला कृति-रसौ या सप्तसप्ति द्युति:
सप्तर्षि प्रणतांघ्रि पंकजयुगा या सप्तलोकार्ति-हृत ।
कश्मीर-प्रवरेशा-मध्य-नगरी प्रद्युम्न पीठे-स्थिता
देवी-सप्तक संयुता भगवती श्री शारिका पातु न: ।।

2. श्री शांख-चक्र-मुसलाम्बुज-युग्म हस्तां
नागेन्द्र-हार वलयांकित-कण्ठ मौल्याम् ।
सिन्दूर-कुकुंम - सहस्र मरीचि शोभां [दीप्तां]
श्री शारिकां त्रिनयनां हृदये स्मराम: ।।

3. श्री शारिके । शरण्ये त्वं मयि-दासे दयां कुरु ।
ऋणं रोगं भयं शोकं-रिपून्नाशाय सत्वरम् ।।

इस प्रकार वेद-भगवान के देवीसूक्तस्थ मांगलिक श्लोकों द्वारा

देवी पूजा का समापन कर सारी भक्त-मंडली यथाविधि सिद्धपीठ की परिक्रमा करती थी। सम्पूर्ण शारिका पीठ की परिक्रमा करना ही सफल पूजा-समापन, तथा अपना अहोभाग्य समझती थी। इसी परिक्रमा के बारे में (उपलक्ष्य) श्री शारिका-माहात्म्य में इस प्रकार वर्णित है :-

"प्रदक्षिणी कृता भूमि: स शैल-वन-कानना ।
प्रणवाख्यस्य पीठस्य परि दक्षिणत: प्रिये ।।
अर्धं वा पाद भागं वा परिक्रामति यो जन: ।
स याति शिव सायुज्यं यत्र गत्वा न शोचते " ।।

यह शारिका-पीठ है, सिद्धपीठ है, प्रणव (ओंकार रूप) है। त्रिकोटी देवताओं का आवास है। इसके परित: भूभाग का परिक्रमण उपासना का समापन है। अर्ध प्रदक्षिणा,वा, चतुर्थांशभाग प्रदक्षिणा भी स्वीकृत है।

स्मरण रहे, शक्ति की प्रदक्षिणा से भक्तजन "शिव, से एकाकार प्राप्त कर सदा के लिए मुक्त होते हैं। जबकि स्वयं "शिव, का प्रदक्षिणा अर्ध प्रदक्षिणा है। जिसके लक्ष्य :-

यानि कानि च पापानि ब्रह्म हत्यादिकानि च ।
तानि-तानि प्रणश्यन्ति शिवस्यार्ध प्रदक्षिणात ।।

शिव पुराण में वर्णित है ।।

अन्त में जगद गुरु श्रीमच्छंकराचार्यजी रचित "सौन्दर्य लहरी" के द्वारा क्षमापन श्लोकों भगवती जगदम्बा के अनन्त नामों के अपरिमित महिमा का

यथावद् वर्णन प्रस्तुत कर, प्रस्तुत पुस्तक (कश्मीर दर्पण) के प्रथम खण्ड का समापन होता है ।।

तद् यथा :-

1. या माया मधुकैटभ प्रमथिनी या माहिषोन्मूलिनी
या धूम्रेक्षण चण्ड मुण्ड-मथिनी या रक्त-बीजाशनी ।
शक्तिः शुम्भ निशुम्भ दैत्यदलिनी या सिद्धलक्ष्मीः परा
सा देवी नवकोटिमूर्ति सहिता नः पान्तु माहेश्वरी ।।

2. माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी
मातंगी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ।
शक्तिः शंकर-वल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रीं-कारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ।।

3. जप्तं-पापहरं, नुतं-बलकरं, सम्पूजितं-श्रीकरम्,
ध्यातं-मानकरं, स्तुतं-धानकरं, सम्भाषितं-सिद्धिदम् ।
गीतं सुन्दरि! वांछितं प्रतनुतं ते पादपद्म द्वयम्
भक्तानां भावभीति-भंजन करं सिद्ध्यष्टुदं पातु नः ।।

4. ब्रह्मेन्द्र रुद्र हरि,चन्द्र सहस्ररश्मि -
स्कन्द द्विपानन हुताशन-वन्दितायै ।
वागीश्वरि । त्रिभुवनेश्वरि ।विश्वमातः!
अन्तर्बहिश्च कृत, संस्थितये नमस्ते ।।

5
8

सहर्ष प्राप्त कीजिए :

(श्री रूपादेवी शारदा पीठ ट्रस्ट के अधिकृत)
श्री परमानन्द शोध संस्थान श्रीनगर के तत्वावधान में
प्रकाशित पुस्तकें :

प्रणेता–श्री प्रेमनाथ हण्डू

1. श्री वटुक पूजा विधि :
(हिन्दी इति कर्तव्यता युक्त
परिवद्धित तृतीय संस्करण) 6/=
2. श्री श्री महाराज्ञी प्रादुर्भाव :
(हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित सचित्र) 10/=
3. श्री अमरेश्वर माहात्म्यम्
(हिन्दो एवं अंग्रेजो अनुवाद तथा पूर्ण टिप्पणी सहित) 75/=
4. अन्त्येष्टि—अन्तिम संस्कार विधि :
(हिन्दी इति कर्तव्यता सहित-सचित्र) 5/=
5. कश्मीर-दर्पण
(श्री श्री शारिका प्रादुर्भाव का पूर्ण विवरण) प्रेस में
6. श्री गुरुगीता
हिन्दी अनुवाद सहित
(भगवान् गोपीनाथ ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित) 8/=

प्रबन्धक :
प्रकाशन-विभाग

{ इस प्रकार सर्वोपस्कार प्रार्थना करके अन्त में अष्टांग विधि नमस्कार करते रहे । }

आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
पूजाभागं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ।।

पभ्याभ्यां जानुभ्यां -पाणिभ्यां-शिरसा-उरसा-मनसा-वचसा
वचसा अष्टांग प्रणामं करोमि नमः ।।

} इति "कश्मीर - दर्पणे " पंचमः खण्डः }
